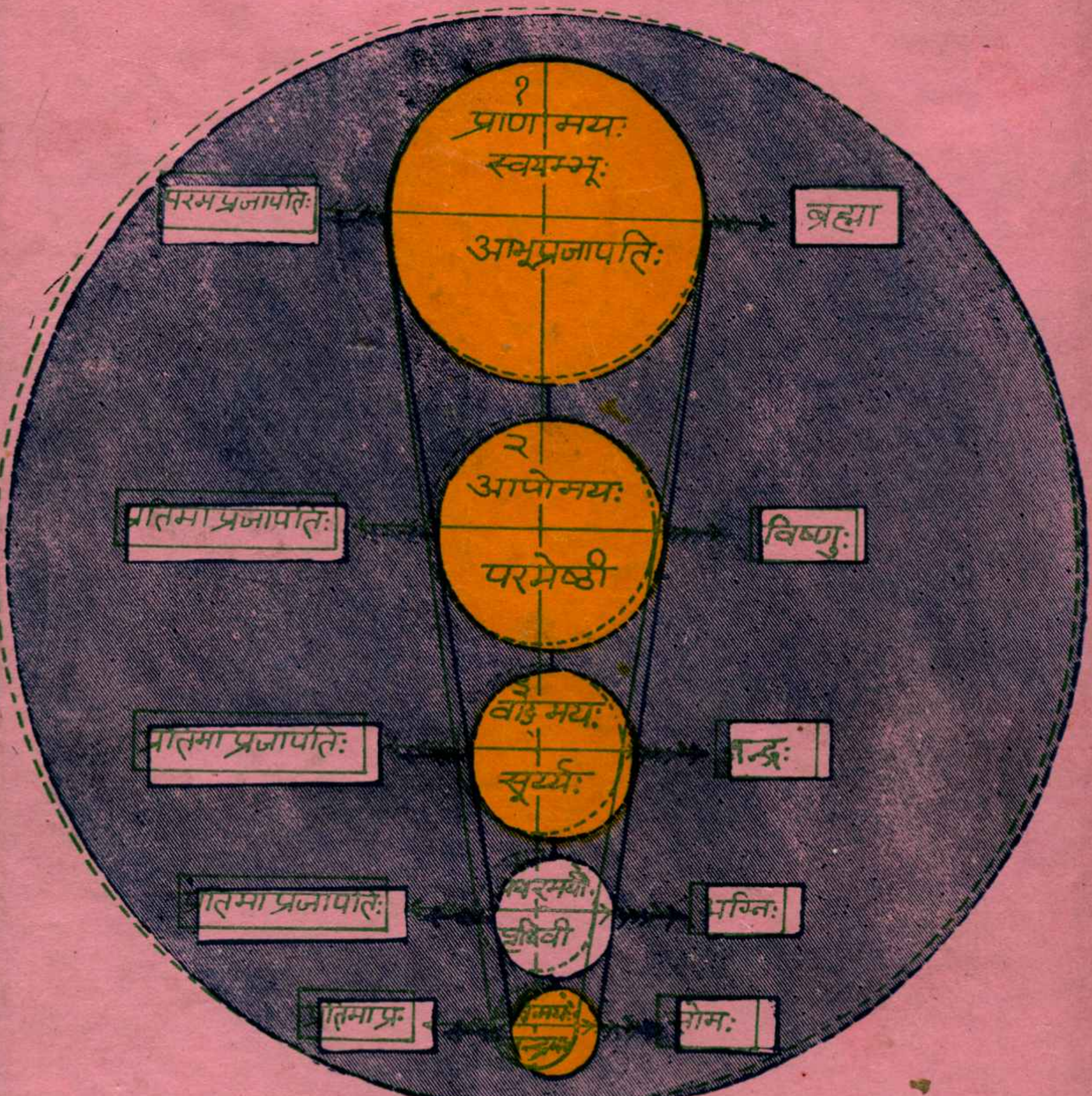
विज्ञान चित्रावली

द्वितीय खण्ड



पं0 मोतीलाल शास्त्री

वेदवीथिपथिक

प्रकाशक :

राजस्थान पत्रिका लिमिटेड,

केसरगढ़, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, जयपुर

विज्ञान चित्रावली

द्वितीय खण्ड

पं० मोतीलाल शास्त्री
वेदवीथिपथिकः

प्रकाशक :
राजस्थान पत्रिका लिमिटेड,
केसरगढ़, जवाहरलाल नेहरू मार्ग,
जयपुर ।

मुद्रक :
श्री बालचन्द्र यन्त्रालय,
"मानवाश्रम", दुर्गापुरा रोड,
जयपुर–१५



पूज्यपाद विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी महाराज (श्रीगुरुचरणाः)

प्रकाशकीय

विज्ञान–चित्रावली का दूसरा भाग प्रस्तुत है । प्रथम भाग में १३० चित्रों का संग्रह दो वर्ष पूर्व छापा जा चुका है । ज्यों-ज्यों चित्रों का परिचय प्राप्त होता जाएगा, उन्हें पुस्तकाकार में प्रकाशित कर दिया जाएगा । हमारा अनुमान है कि लगभग पाँच सौ चित्र पं० मोतीलाल जी शास्त्री के बनाये हुए संग्रहीत हो-जाएँगे । इतने ही चित्र शास्त्री जी के गुरुवर पं० मधुसूदन ओझा के बनाये हुए होंगे, परन्तु वे उपलब्ध नहीं हैं । ज्यों-ज्यों उपलब्ध होंगे, उन्हें भी प्रकाशित कर दिया जाएगा ।

इन चित्रों की उपयोगिता निर्विवाद है । वेद को जब विज्ञान कहा जाए तो आवश्यक है कि उसका स्वरूप भली-भाँति प्रस्तुत किया जाए ताकि पाठकों को समझने में सुविधा हो । ओझा जी ने कदाचित् यही सोच कर वेद–वाङ्मय में एक नयी विधा को जन्म दिया और चित्रों के द्वारा ब्रह्माण्ड की रचना-प्रक्रिया एवं पदार्थों को समझाया है ।

स्व० शास्त्री जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री कृष्णचन्द्र शर्मा ने यह सामग्री उपलब्ध करवाई जिससे कि यह प्रकाशन सम्भव हो सका है ।

राजस्थान विश्वविद्यालय के सेवानिवृत एसोसिएट प्रोफेसर डॉ० मदनगोपाल शर्म्मा ने चित्रों के चयन एवं परिचायक व्याख्यांशों की यथातथ्यता हेतु संशोधन किया है ।

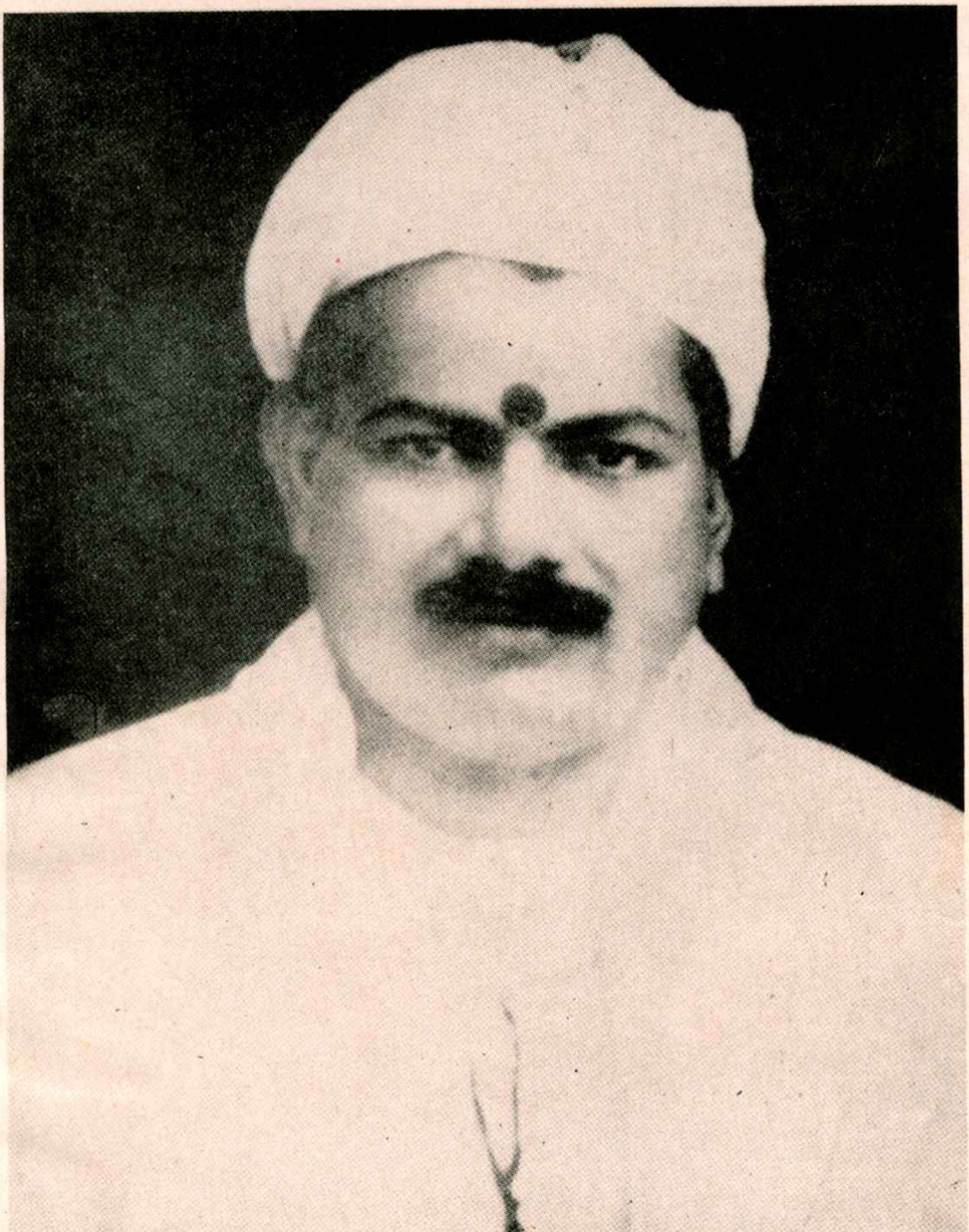
इस संकलन को प्रकाशित करने और चित्रों को संकलित कर उनके संयोजन एवं टिप्पणी-लेखन में स्व० शास्त्री जी के पौत्र श्री प्रद्युम्न कुमार शास्त्री ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान किया है ।

यज्ञ-पात्रों के चित्रों की टिप्पणी तैयार करने में जो सहयोग श्री अश्विनी कुमार ने दिया है उसके लिए हम उनके आभारी हैं ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि वेद–विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए ये चित्र उपयोगी सिद्ध होंगे ।

गणेश चतुर्थी
वि० सं० २०४६

—कर्पूरचन्द 'कुलिश'

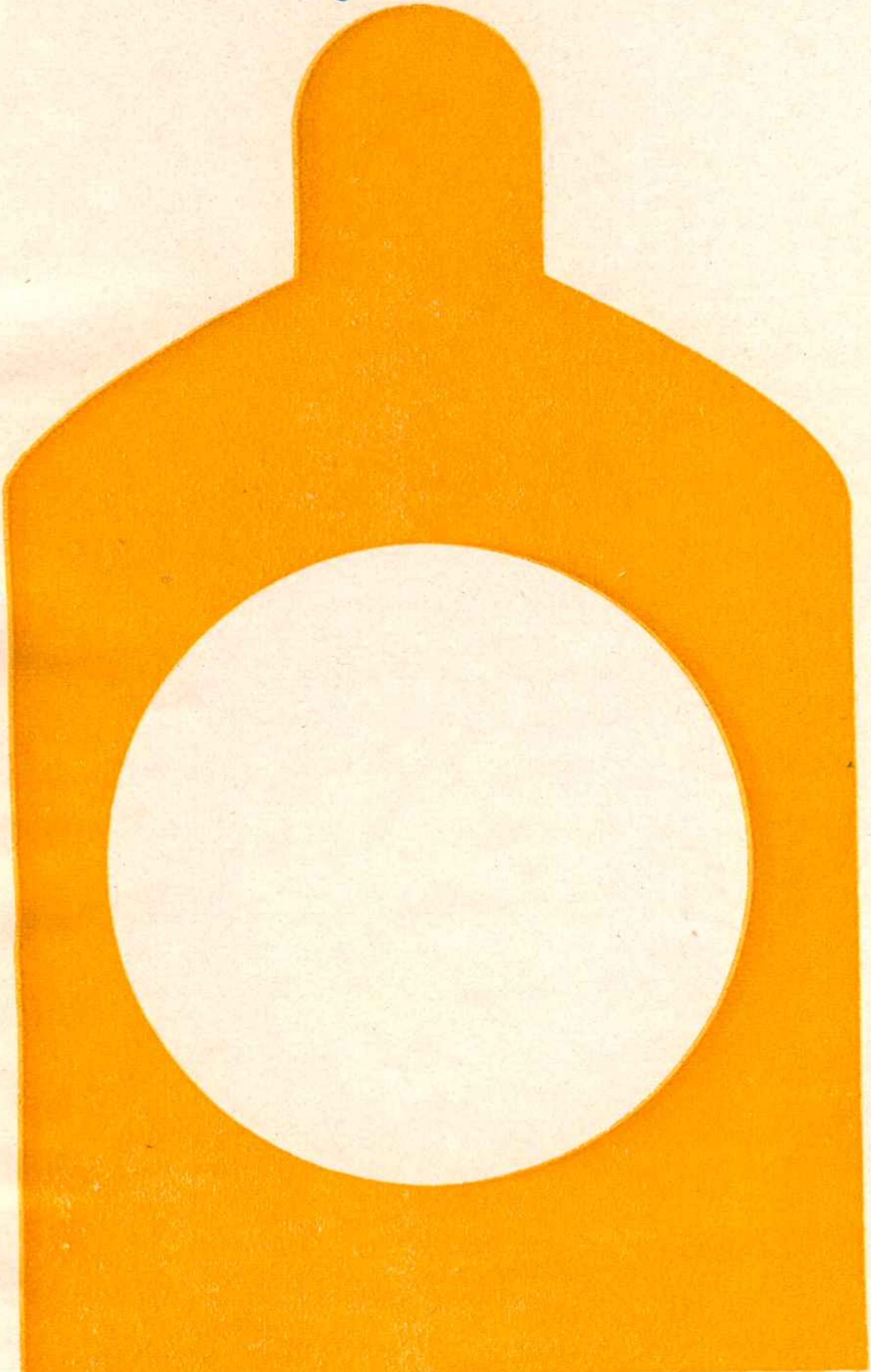


वेदवाचस्पति पं० मोतीलालजी शास्त्री

शतपथब्राह्मण

प्रथम काण्ड (प्रथम खण्ड)

पुरोडाशपात्री

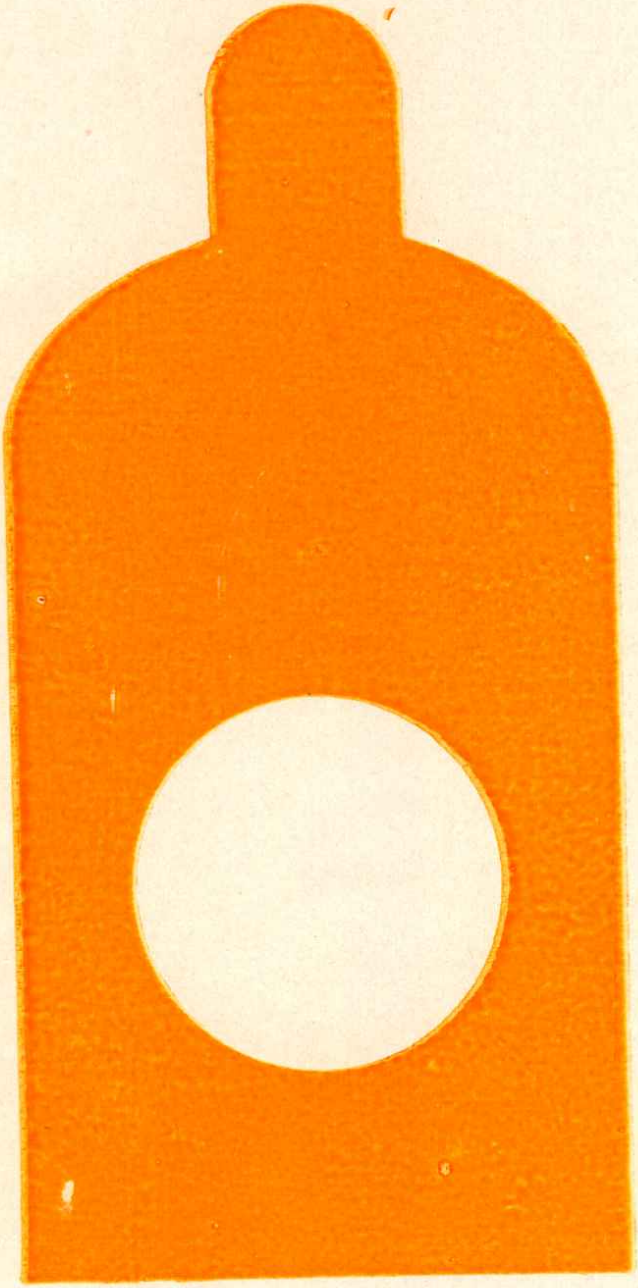


पुरोडाशपात्री 'चतुरस्र' (चौकोर व ग्रागे कूर्मशिरा) होती है, बीच में 'वर्तुल खात' (गोलाई लिए गहराई) होती है। इसी वर्तुल खात में ग्राज्य रूप पुरोडाश (मदन्ती जल से सिद्ध पिसे [पिष्टीरूप] पिण्ड–लोक भाषा में पिन्नियाँ ही–पुरोडाश है) रक्खा जाता है।

—"पुरोडाशस्यपात्री" तु चतुरस्र समानतः। खातेन वर्तुलैव युता यज्ञे प्रशस्यते। –शतपथ भाष्य

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

प्रणीता



"पुरोडाश पात्री" की ही तरह बारह अङ्गुल नाप की कही गई है। कुशों के सम्मार्जन के लिए इसमें अध्वर्यु व यजमान द्वारा जल ले जाया जाता है। कुश सम्मार्जनानन्तर मन्त्रों के पाठ द्वारा शेष जल को वेदि में डोल देते हैं। "प्रणीता" वारणा ग्राह्या द्वादशाङ्गुल सम्मिता।

—शत० ब्रा० पारिभाषिक सूचनाएँ

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

जूहूः स्रुक्



नीचे से हथेली के आकार का और ऊपरी भाग में पद्मपत्र की तरह का बाहुमात्र खादिर (खदिर की लकड़ी का बना) ही "जुहूः स्रुक्" कहलाता है। यह एक प्रकार का लम्बा चमस रूपी घृतपाती पात्र विशेष है। पलाशकाष्ठ से भी निर्म्मित होता है। मुख्य होम में ही 'अग्निहोत्रहवणी' की तरह इसका प्रयोग वैदिक काल में किया जाता था। "हूयते अनया" निर्वचन से 'जुहूः' कहा जाता है।

खातेन हस्ततलवदाकृत्या पद्मपत्रवत्। खादिरो बाहुमात्रस्तु "जुहूः स्रुक् संज्ञकः स्रुवः"।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

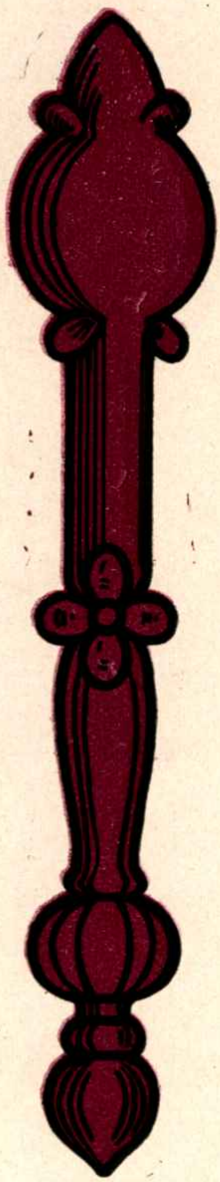
अमृतस्रुक्



'जुहूः स्रुक्' की तरह ही 'अमृतस्रुक्' हंस के मुख के आकार वाला अरत्निभाग अङ्गुष्ठपर्व की तरह का घृतपाती पात्र था। अर्घपर्व प्रणाली की तरह का नासाकृति वाला इसका अगला भाग होता था। दर्शपूर्णमास यज्ञ में जहाँ 'जुहूस्रुक्' मुख्य होम में प्रयुक्त होता था वहाँ 'उपयाग' में 'अमृतस्रुक्' काम में लाया जाता था।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

ध्रुवास्रुक्



विकङ्कत वृक्ष की लकड़ी से बनाया जाता था। 'जुहूः' चमस का उपकारक था घृतपात्र में घृत कम पड़ने पर घृत भरने के काम में आता था, शेष एक स्थान विशेष (दाएँ भाग में) पर स्थिर रक्खा रहता था। इसी कारण ध्रुवा कहा गया। बीच दण्ड में 'ध्रुव' तारे की शकल का तारा बढ़ई पहचान के लिए बना दिया करता था जिससे भेद रहे।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

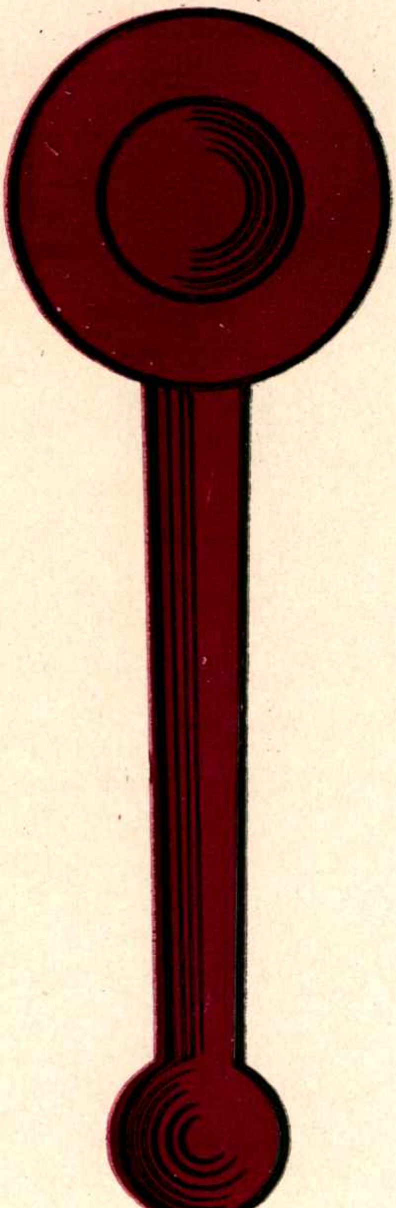
पुष्करस्रुक्



दर्शपूर्ण-मास यज्ञ, पूर्णिमा अथवा अमावास्या इन दो रात्रि विशेष में प्रारम्भ किए जाते थे। पूर्णिमा रात्रि में प्रारम्भ करने पर "पुष्करस्रुक्" रखा जाता था और केवल ब्राह्मण व क्षत्रिय ही दर्शपूर्णमास के यज्ञों में इसका प्रयोग करते थे; वैश्य और रथकार नहीं। इस चमस का अग्र (घृतपात्री) भाग पुष्कर-कमल के आकार का होता था। सर्वाग्र हस्तिसूंड के सर्वान्त सा होता था।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

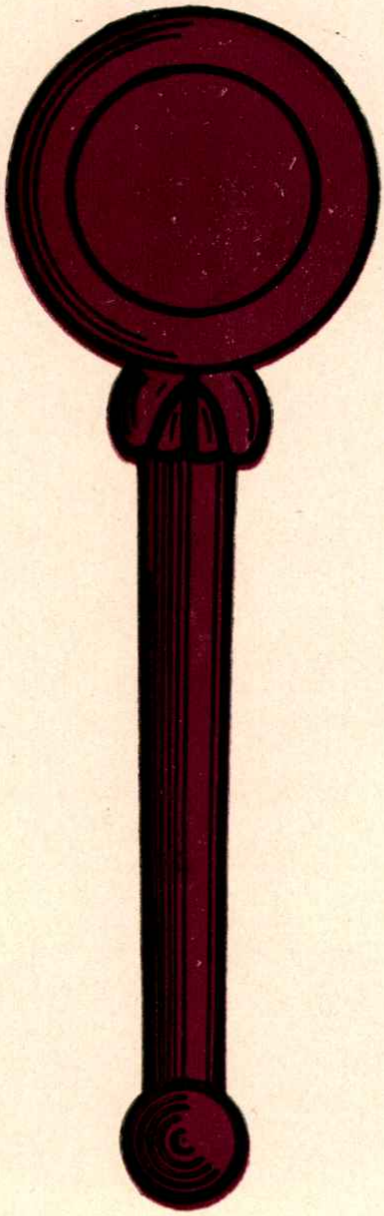
अग्निहोत्रहवणी



सामान्य 'अग्निहोत्र' जिसे आजीवन करने का विधान है उसमें काम में लाया जाने वाला घृत-पात्री चमस था जो सामान्यतः खदिर या पलाश की लकड़ी से बनाया जाता था। आज भी इसी रूप में यज्ञ में काम में लाया जाता है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

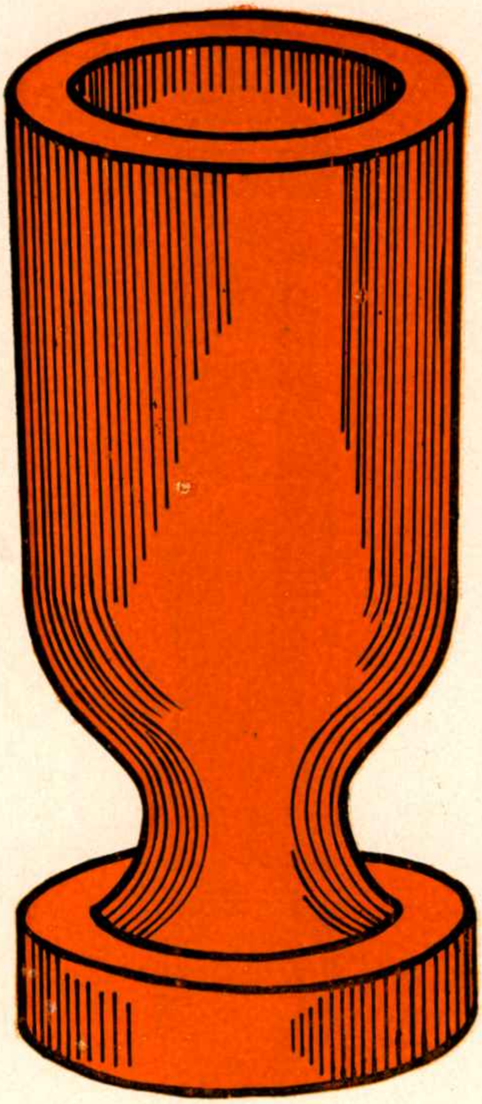
वैकङ्कतस्रुवः



"अग्निहोत्र हवणी" जहां खदिर या पलाश की बनी होती थी वहाँ "वैकङ्कतस्रुवः" विकङ्कत वृक्ष की लकड़ी का बना होता था। 'दर्शपूर्णमास' और सामान्य 'अग्निहोत्र' से भिन्न यागों में इसका प्रयोग होता था। बाद में यह भेद जाता रहा।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

उलूखल



पलाश, वरण, खदिर अथवा काष्मर्यादि और किसी भी मजबूत लकड़ी का उलूखल बनाया जाता है। इसके नीचे का अधोभाग ठोस होता है। ऊपर का भाग विवरयुक्त होता है। इसका पेंदा पसरा हुआ होता है। मुंह चौड़ा होता है। मध्य भाग में रास्ना होती है। अरत्नि (हाथ भर) मात्र इसकी ऊंचाई होती है। पुरोडाश सम्बन्धी व्रीहि आदि को कूटने के लिए ही यज्ञ में इसका प्रयोग किया जाता है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

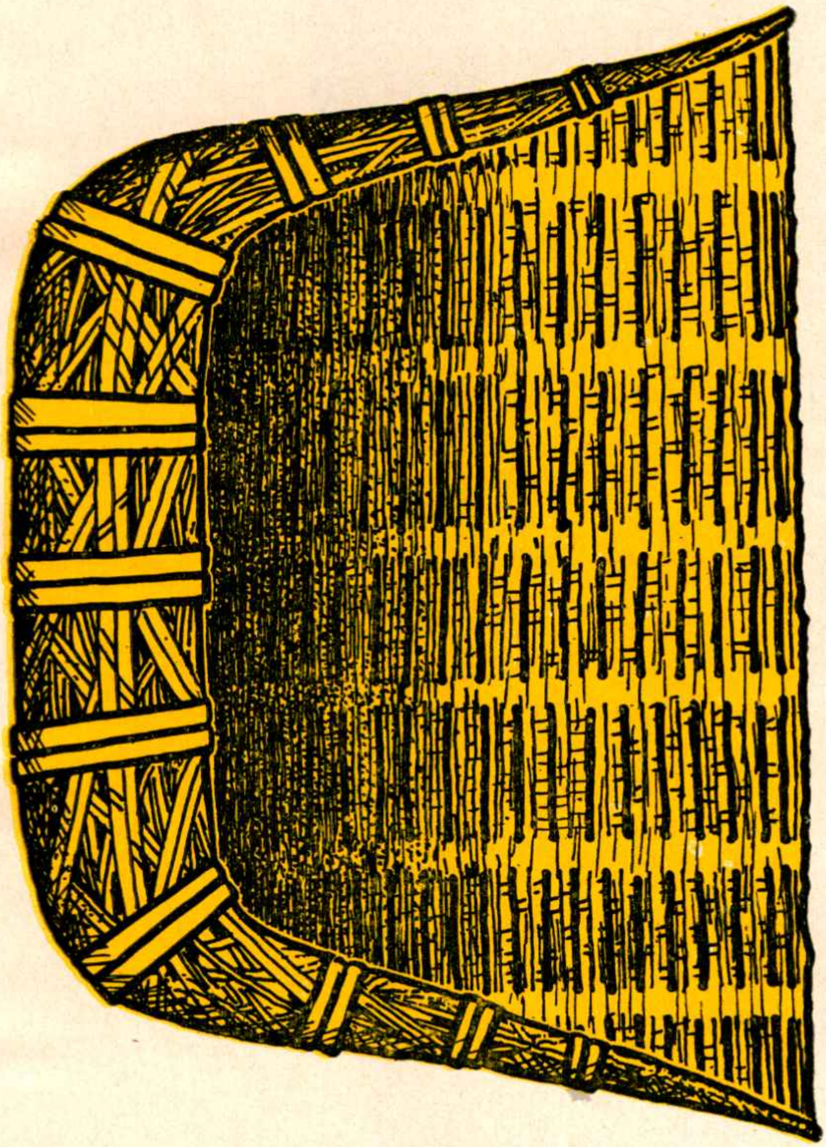
मूसल



मूसल खदिर, वरण, काष्मर्य्य आदि में से किसी एक की लकड़ी का बनाया जाता है। व्रीहि इसी से कूटा जाता है। इसकी ऊँचाई में कामाचार है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

शूर्पम्



शूर्पम् को लोकभाषा में **'छाजला'** भी कहते हैं। वेदभाषा में यही छाजला **'शूर्प'** नाम से प्रसिद्ध है। यह शूर्प बांस की फरचटों, अथवा नडों (नरकुलों या सरकण्डों) का बना होता है। इसका स्वरूप चौकोर होता है। इसके चारों भाग एक हाथ लम्बे व चौड़े होते हैं। यह चर्म्म से वेष्टित रहता है। व्रीहि, यव आदि के तुष निकालने के लिए ही यज्ञ में इसका ग्रहण किया जाता है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

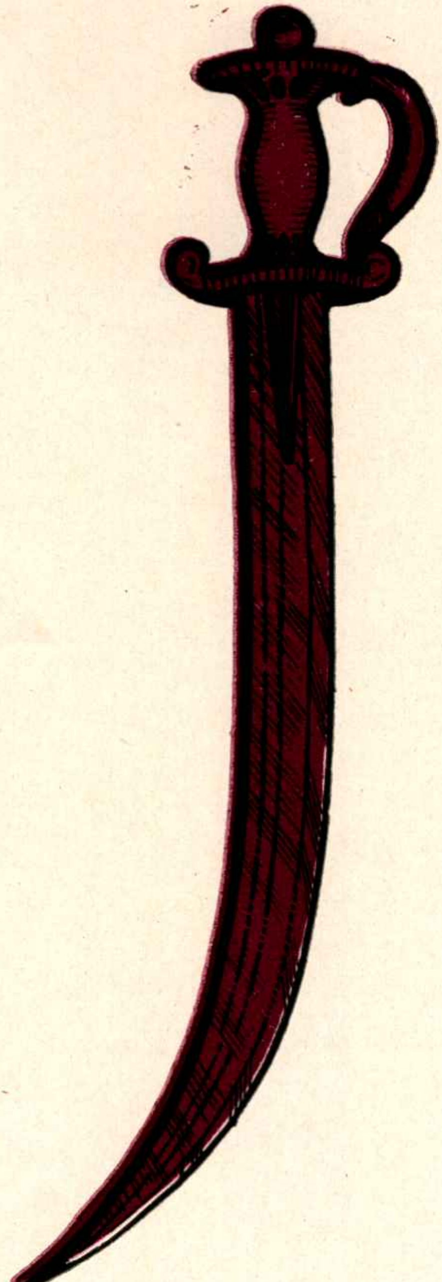
शम्या



शम्या खदिर, वरण, विकङ्कत इन तीनों में से किसी एक की लड़की का बनता है। इसकी लम्बाई के विषय में प्रादेशमात्र, ३२ अंगुल, ३६ अंगुल ये तीन बिकल्प हैं। जिस समय दृषत् पर तण्डुल पीसे जाते हैं, उस समय इस आयुध को दृषत् के नीचे रखा जाता है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

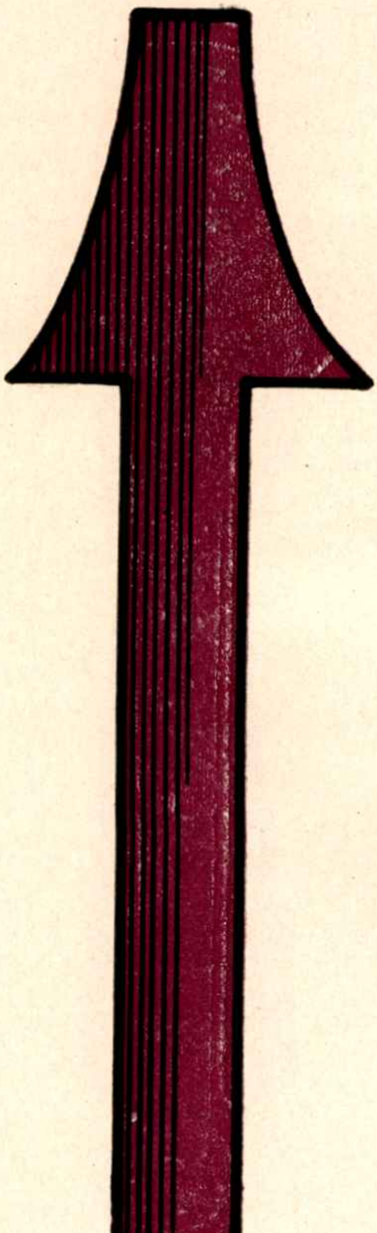
स्फ्य



खड्ग की आकृति जैसा, अरत्नि (अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना इस कोषप्रमाण के अनुसार–कनिष्ठ अंगुलि–चिट्टी अंगुलि को बाहर निकालने के अनन्तर मुट्ठी बँधा हुआ जो बाहु है, उसे अरत्नि कहते हैं) मात्र लम्बा, चार अंगुल चौड़ा, किन्तु अग्रभाग से तीक्ष्ण (नोंकदार) खदिर (खैर) अथवा विकङ्कत (कँटाई), दोनों में से किसी एक की लकड़ी का बना हुआ, जो आयुध है, उसे ही 'स्फ्य' कहते हैं। इसी को वज्र भी कहते हैं। स्फ्य से प्रहारादि कर्म्म होते हैं।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

शृतावदानम्



सिरे का भाग अङ्गुष्ठ पर्व चौड़ा और पार्श्व लटकन पृथुवक्र तथा अगले भाग की लम्बाई एक प्रादेश भर होती थी व दण्ड [पिछला डण्डा] दीर्घ कहा गया है। यह भी खदिर या पलाश से बनता था और पुरोडाश वितरण के काम आता था।

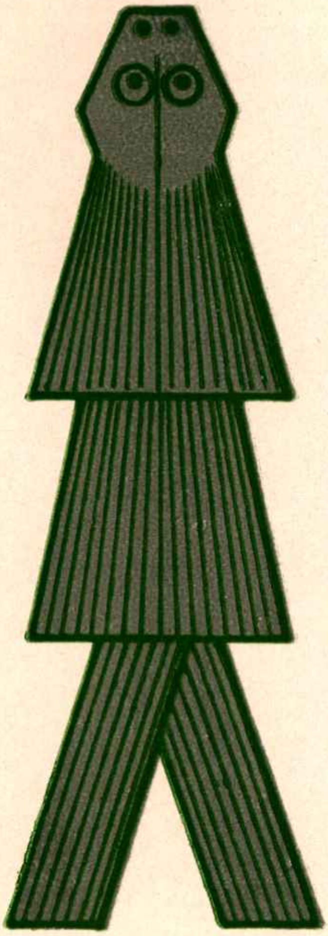
श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

उपवेश



खदिर की हरी लकड़ी का अरत्निमात्र (कोहनी से कनीनिकाग्र तक की लम्बाई—साधारणत:- १८") प्रमाण का हस्ताकार होता था। यह यज्ञाग्नि को हिलाने के काम में आता था जिससे सामग्री (हवि) के अधिक पड़ने आदि से अग्नि प्रधूमित न हो उठे।

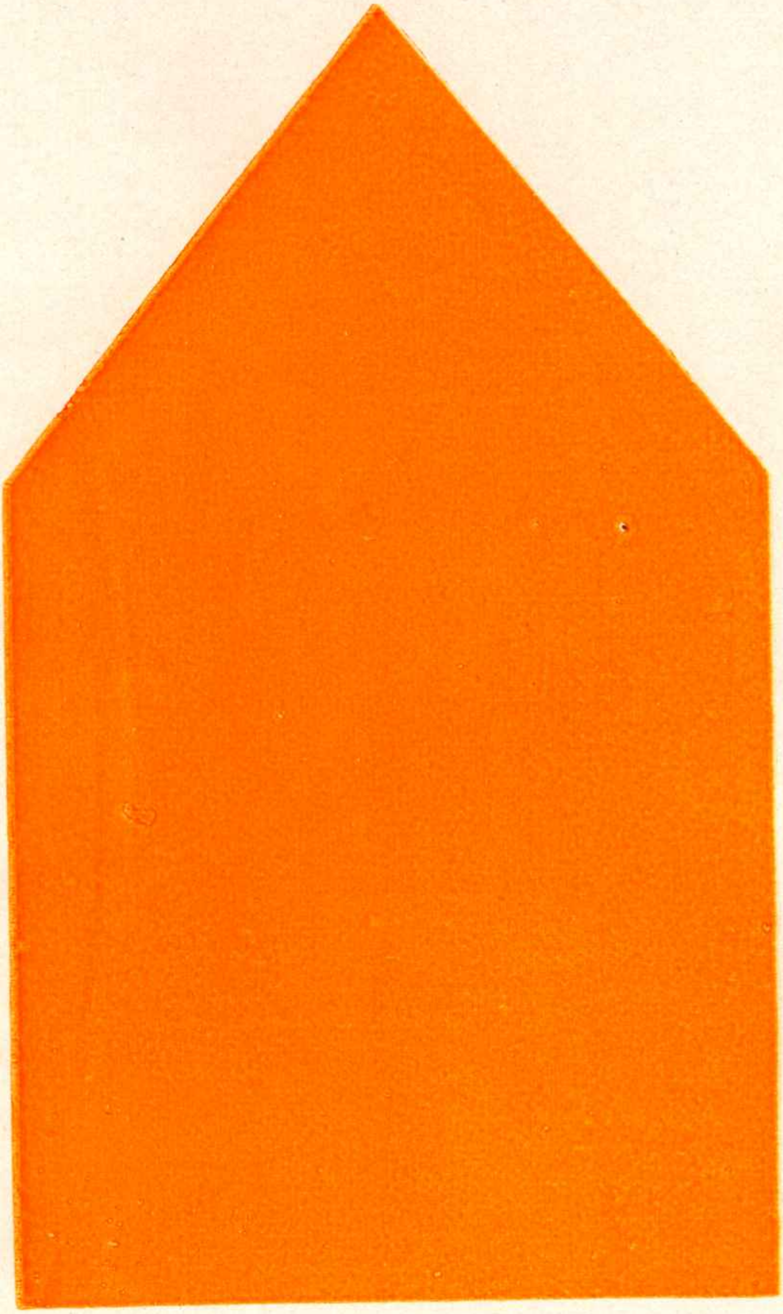
मकराकारकूर्चः



बाहुमात्र लम्बाई की मूँज से बनी 'कूर्च' (कूँची) होती थी । वेदि इष्टकाओं पर लेपन, जल का छिड़काव व वेदि स्थल की सफाई आदि विभिन्न कामों में इसका प्रयोग होता था ।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

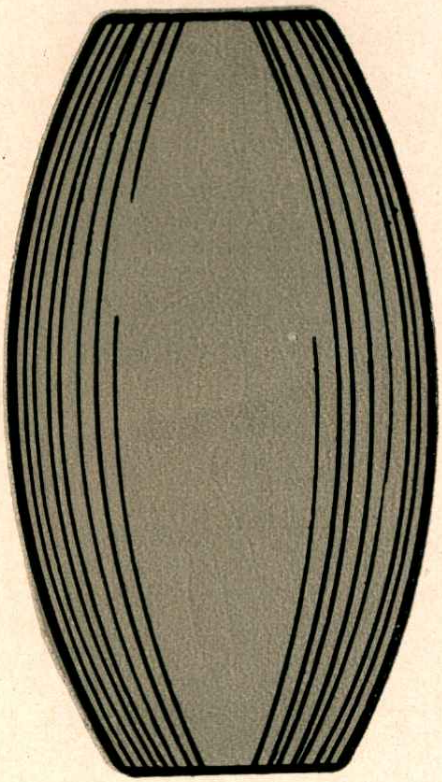
दृषत्



दृषत् को लोक भाषा में सिल्ला या सिलपट्ट भी कहते हैं। वेदभाषा में इसी सिल्ला को **दृषत्** कहते हैं। यज्ञ में हवि को पीसने के लिए ही इसका ग्रहण किया जाता है। यह आयुध पत्थर का बना होता है।

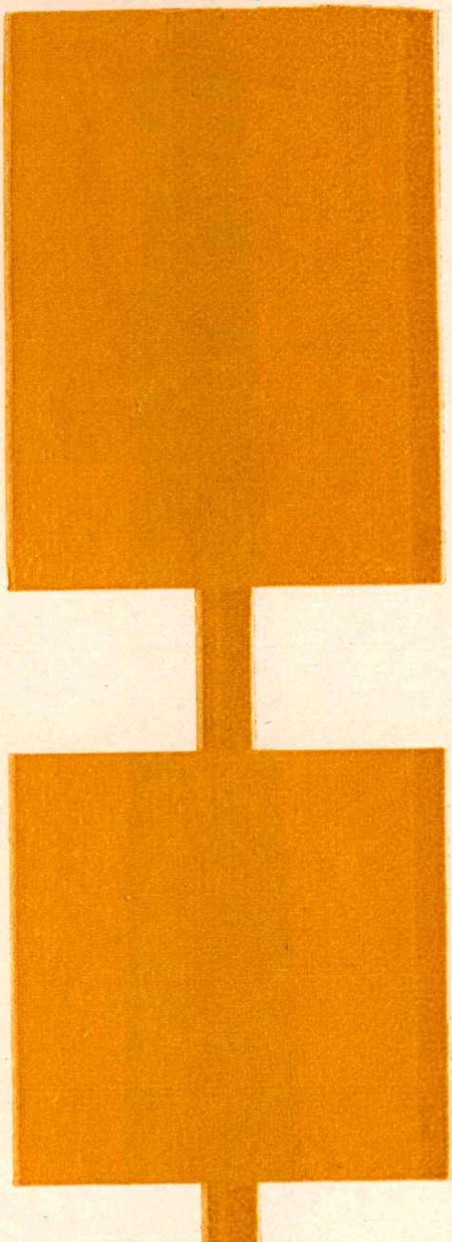
श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

उपल



उपल को लोकभाषा में लोढ़ी कहते हैं। इसे ही वेदभाषा में **उपल** कहते हैं। इसी उपल द्वारा दृषत् पर हवि पीसा जाता है। इसकी लम्बाई ६ अंगुल की होती है। कितनों ही के मतानुसार "उपलों वर्त्तुल: प्रोक्तो वितस्ति परिमाणक:' के अनुसार यह उपल गोल होता है और वितस्ति (वि + तस् + ति) बारह अंगुल मात्र लम्बा होता है।

षडवत्तम्



एक दण्डनाल से जुड़ा होने और षडङ्गुल प्रमाण होने के कारण इसे "षड्वत्तम् युगलकम्" कहा गया है। श्रौतपदार्थ निर्वचन में 'उपहूत इडा' में अध्वर्यु द्वारा आग्नीध्र को हाथ में इडा के कुछ अंश को इसके माध्यम से अभिधारण करने का प्रसङ्ग है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

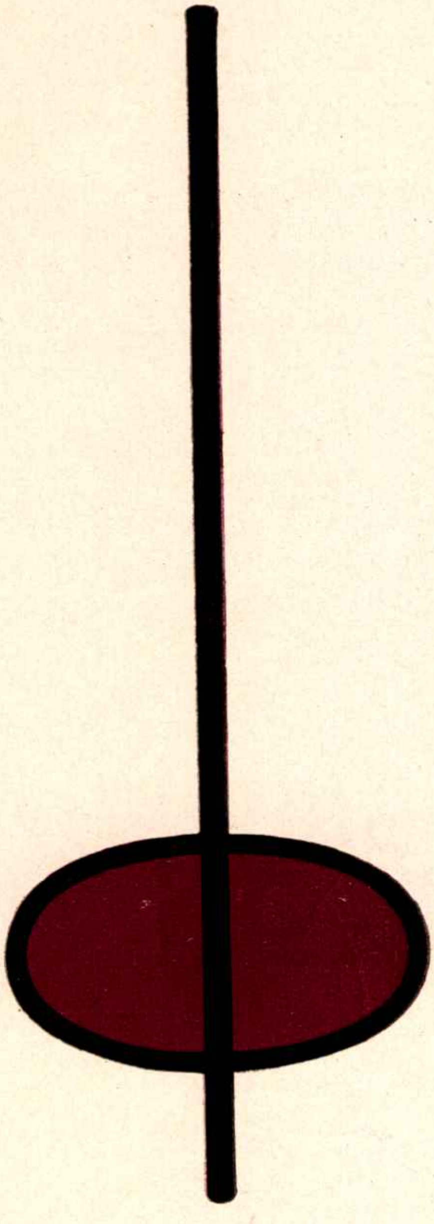
अभ्रिः



शम्या की विपरीताकृतिवाली 'अभ्रिः' खदिर अथवा अश्वत्थ अथवा शमी वृक्ष की लकड़ियों से बनती थी । इससे ओखली में सोमवल्ली कूटी जाती थी । पञ्जाब में 'अमरी' रूप में कुछ क्षेत्रों में जानी जाती है ।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

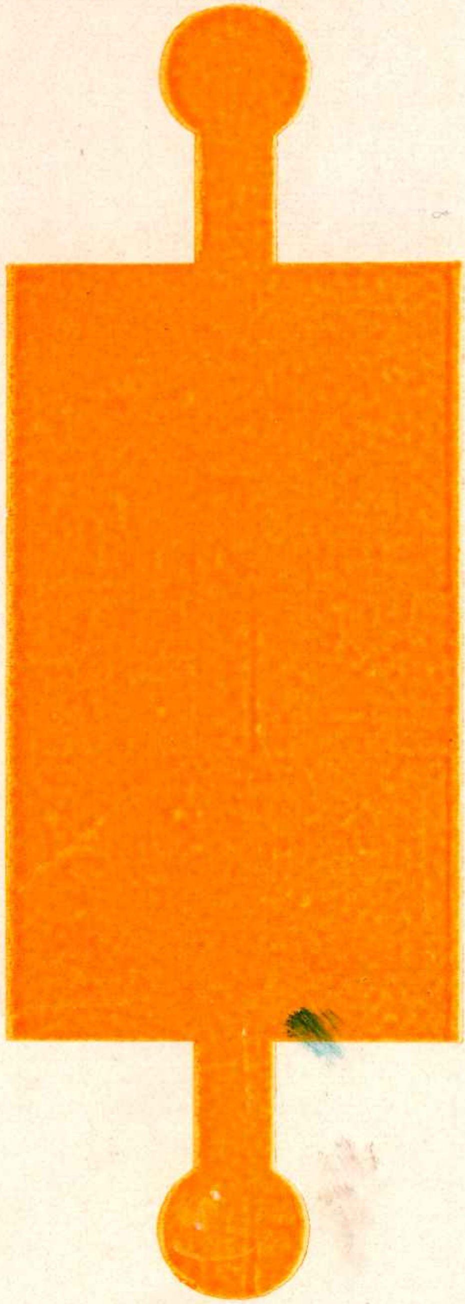
चात्रम्



सामान्यत: यह सूत लपेटने का यन्त्र था। चक्राकार पहिये के बीच में पतला गोल दण्ड निकाला जाता था। यह प्रमन्थ के रूप में भी प्रयुक्त होता था। खदिर की, पलाश की काष्ठ इसको बनाने के लिए काम में ली जाती थी। यह द्वादशाङ्गुल होता था।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

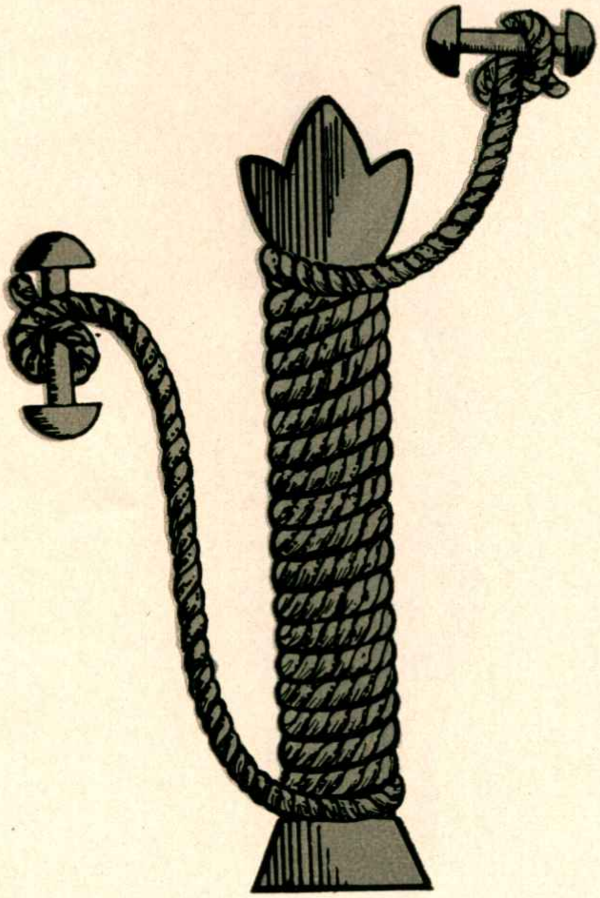
ओविलो । औपविली । औविली



ओविली भी मन्थन यन्त्र है जो देवदारु के काष्ठ से अन्यथा खदिर या पलाश के काष्ठ से बारह अङ्गुल प्रमाण का बनता था, एक अङ्गुल व एक अङ्गुष्ठ प्रमाण के दोनों ओर पकड़ने के सिरे होते थे जैसा कि चित्र में दिखाया गया है । इसमें पावक मन्थन भी होता था ।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

प्रमन्थः



लोक भाषा में इसे 'मथानी' कहते हैं। आठ अङ्गुल प्रमाण की मथानी कही गई है। 'आज्या' प्राप्ति में यह सहायक होती थी।

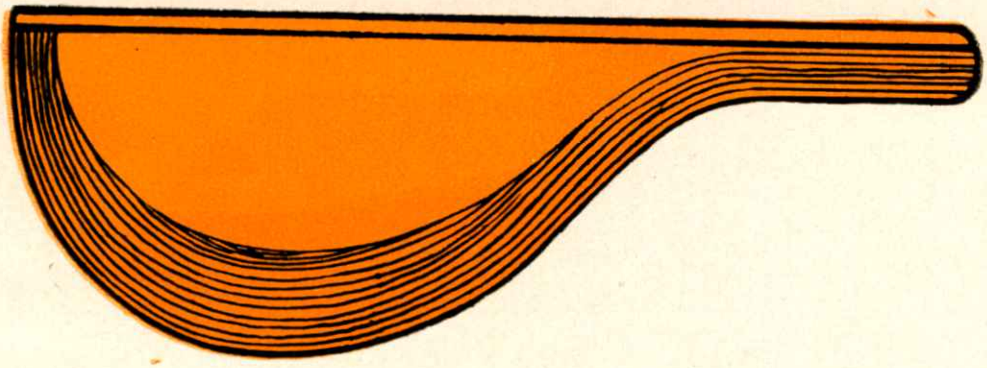
नेत्रम् (रज्जुः)



एक व्याम (फैलाए गए दो पुरुष-हाथों का अन्तराल अर्थात् ७२") प्रमाण की नेत्र (नेती पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गांवों में प्रज्ञात) हुआ करती थी, यह सन से बनाई जाती थी, मूंज से नहीं। इसे 'मथानी' चलाने के काम में लेते थे। अन्यत्र इसकी बँधनी नेत्राकारा होने से भी इसे 'नेत्रम्' के रूप में जानते थे।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

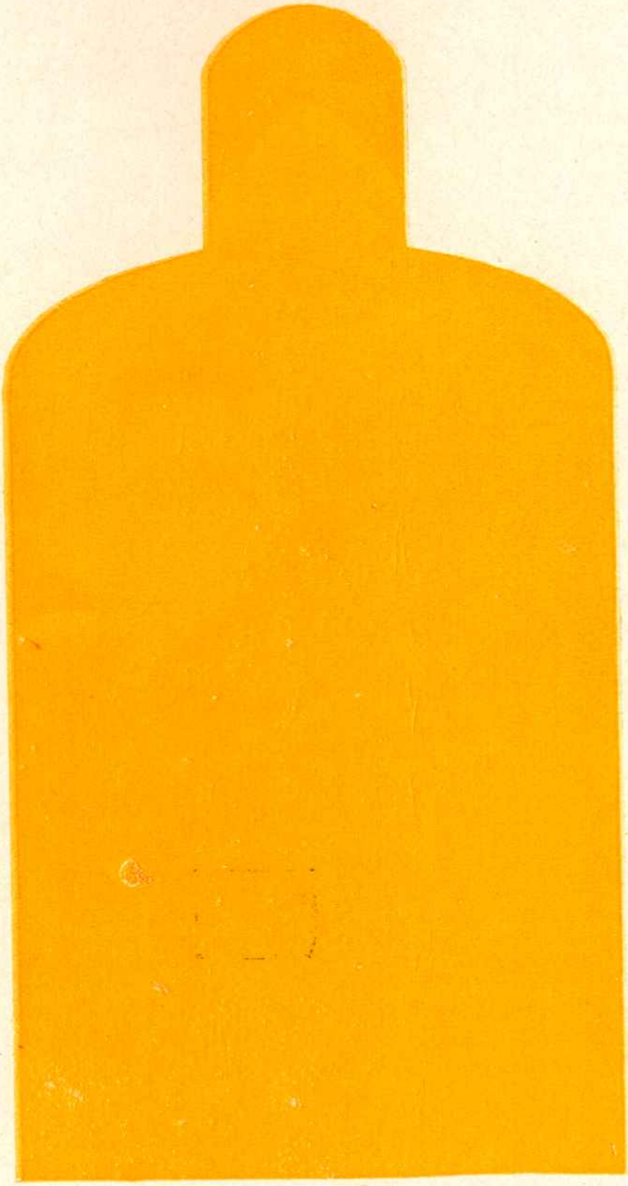
अन्तर्धानकटम्



गार्हपत्य याग में अध्वर्यु 'पत्नी संयाज' को फैलाता था, देवों के पत्नी याग काल में अपने हवि-र्भाग को ग्रहण करने की कामना से आए देवों से स्त्रीत्व भाव से लज्जा के कारण हवि हँसिए के (कट) आकार वाले अश्वत्थ काष्ठ से बने इस 'अन्तर्धानकटम्' से ढाँप दी जाती थी।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

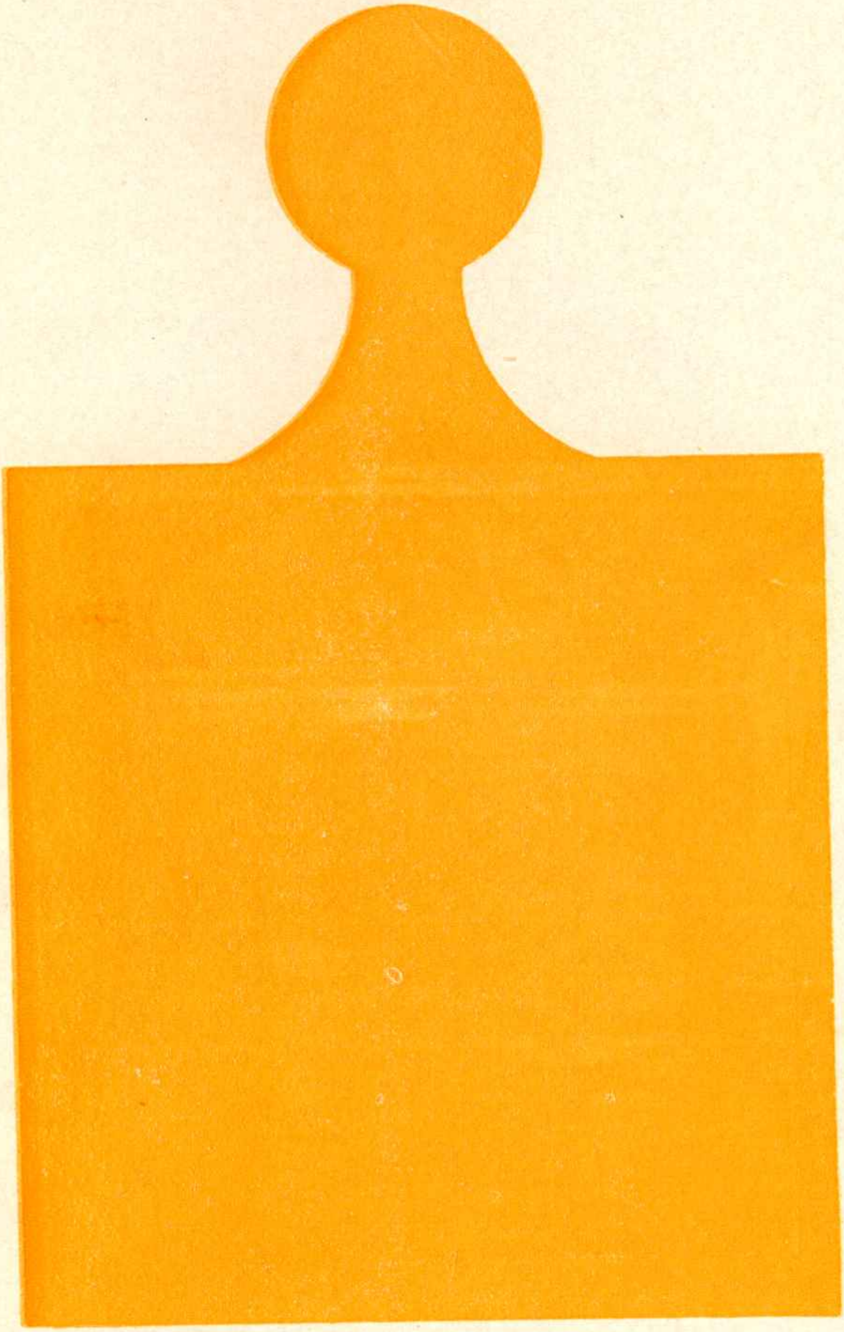
हविर्द्धानपात्री



खदिर अथवा पलाश के काष्ठ से 'हविर्धान पात्री' बनती थी। देवताओं को दी जाने वाली 'हविः' (सामग्री) इसमें रक्खी जाती थी। यह भी चतुरस्र होती थी और दण्ड इसका गोलाई लिए शिव लिङ्गाकार होता था। प्राशित्रहरण से कम चौड़ी होती थी। बारह अङ्गुल लम्बी होती थी और प्रारम्भ में दण्ड के पास अर्धचन्द्राकारा होती थी।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

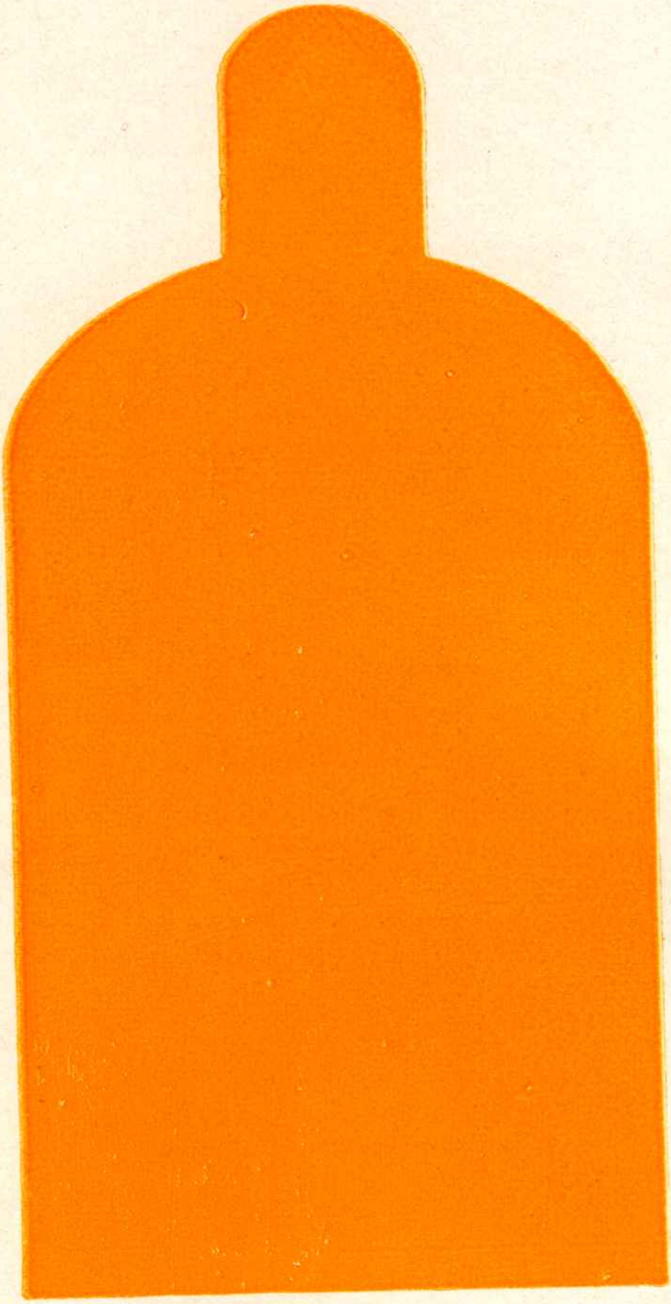
प्राशित्रहरणम्



खदिरकाष्ठ से निर्म्मित प्रादेशमापी गाय के कान के आकार का चार अङ्गुल माप के दण्डवाला होता है, इससे प्राशित्र-यज्ञ के ब्रह्मा को दिए जाने वाले हवन करने से बचे हवि का भाग-का हरण होता है अतः इस व्युत्पत्ति के कारण इसे 'प्राशित्र हरणम्' कहा जाता है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

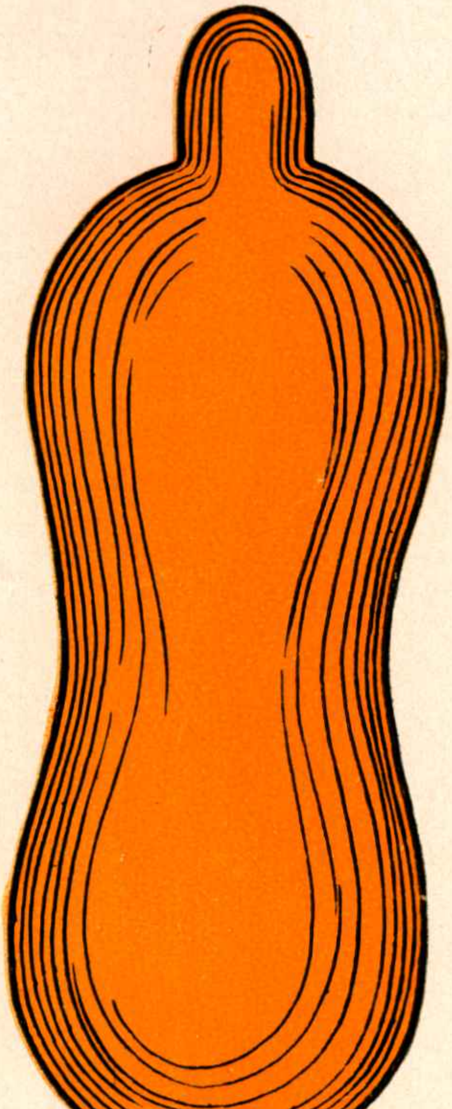
ब्रह्म चमसः



यह नयग्रोध वृक्ष से प्राप्त काष्ठ से अरत्नि माप का बनता था। उपर्युक्त आकार 'चतुरस्त्रो ऽल्पदण्डो ब्रह्मचमस' चौकोर छोटे पकड़ (दण्ड) वाले चमस का है। होतृचमस। यजमानचमस। उद्गातृचमस। प्रशास्तृचमस। ब्राह्मणाच्छंसिचमस। अच्छावाकचमस। आग्नीध्रीयचमस और होते थे और अपने-अपने आकार भेद से पहिचाने जाते थे।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

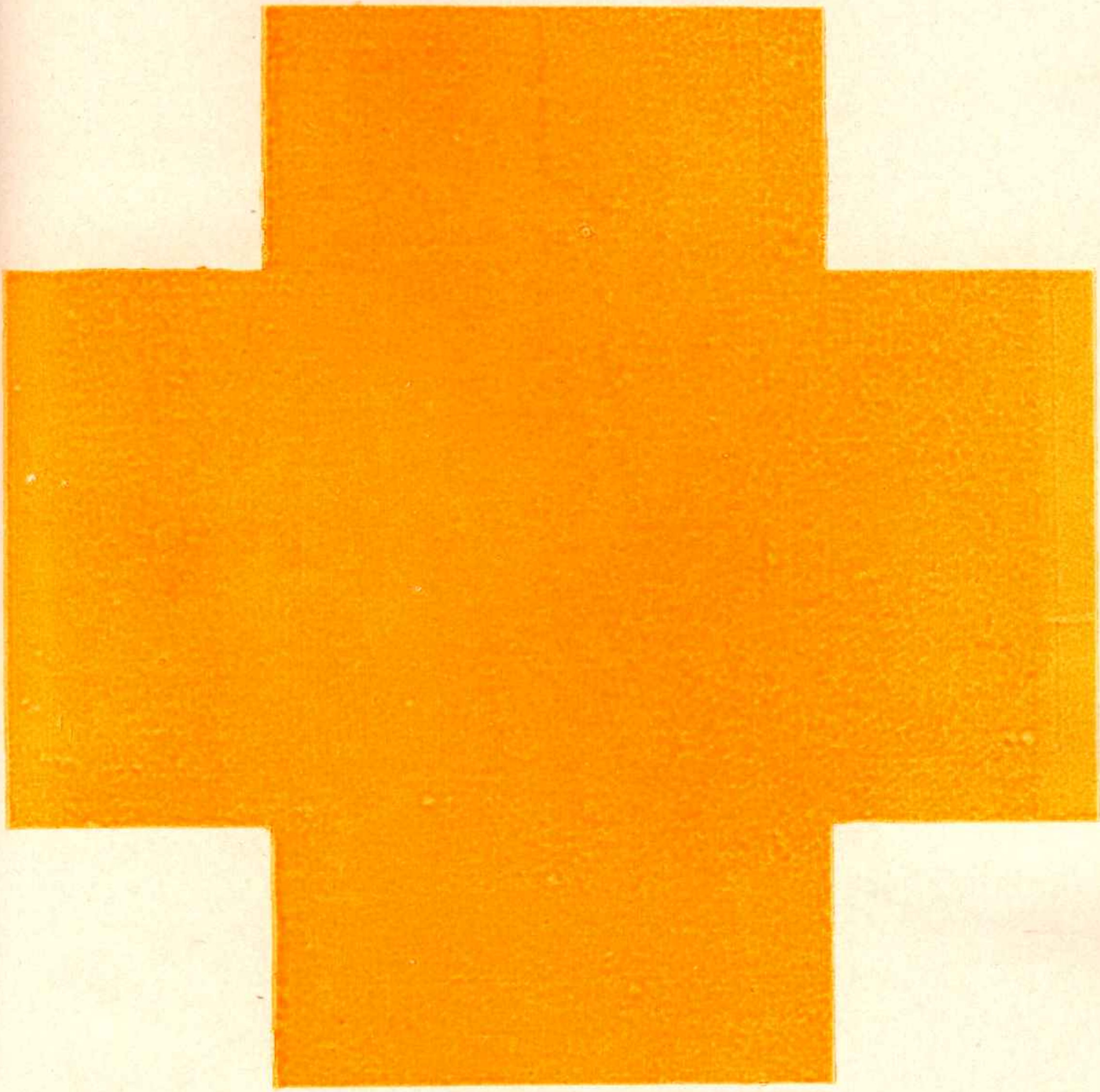
इड़ापात्री



यह भी अश्वत्थ से प्राप्त काष्ठ से बनती थी। देव-हवि इडा कही जाती है। प्रयाज और अनु-याज के बीच दी जाने वाली हवि इसमें रखी जाती थी अतः उपर्युक्त आकार विशेष बनता था। यह भी लगभग चतुरङ्गुल प्रमाण होती थी इसे 'पदपरिमितायामबिलयुक्त' अर्थात् नीचे पदाकारा व आगे बिल के आकारवाली कहा गया है। इडा दुग्ध के चार रूपों के मिश्रण से बनती थी और हविप्रदाताओं व अध्वर्यु व आग्नीध्र आदि द्वारा चख ली जाती थी। विषैली न हो सम्भवतः इस परीक्षण की दृष्टि से।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

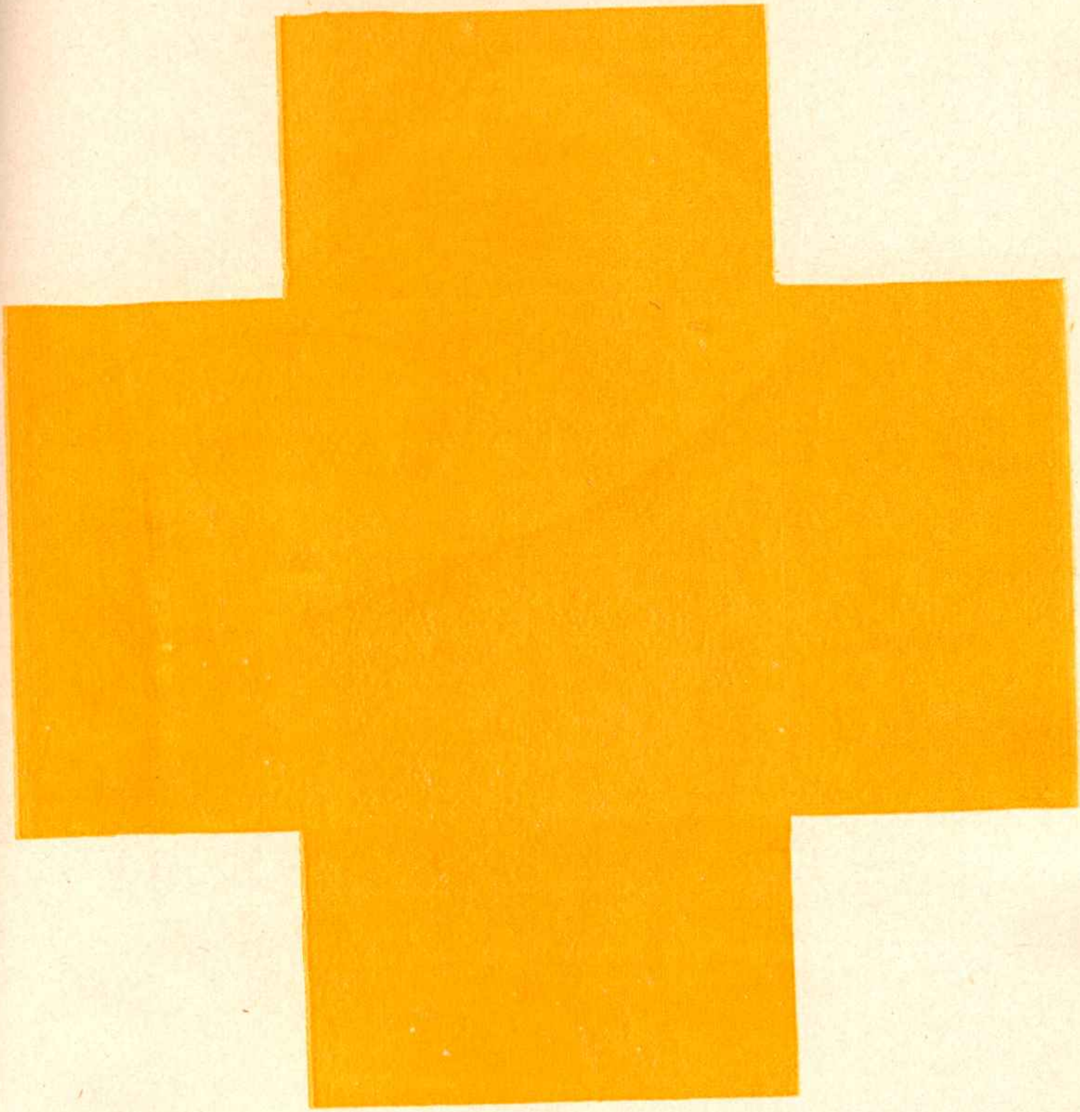
पत्न्यासनम्



यजमान पत्नी के बैठने के लिए आसन । यह दक्षिण वेदि के दक्षिण भाग में यजमान के दाहिने भाग में होता था । पुण्य याज्ञिक कार्यों में पत्नी का स्थान पुरुष के दाहिने था ।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

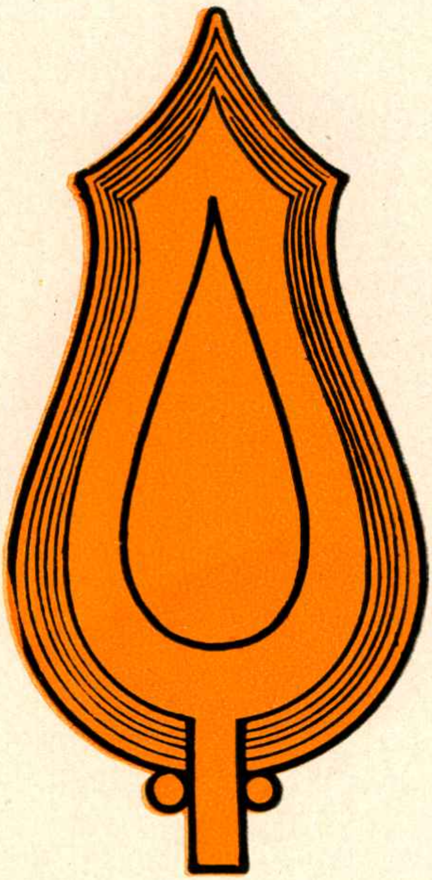
होत्रासनम्



होता का आसन उत्तर वेदि के सन्निकट भाग में स्थित होता था। अपनी अवस्थिति के कारण वह 'होत्रासनम्' कहलाता था।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

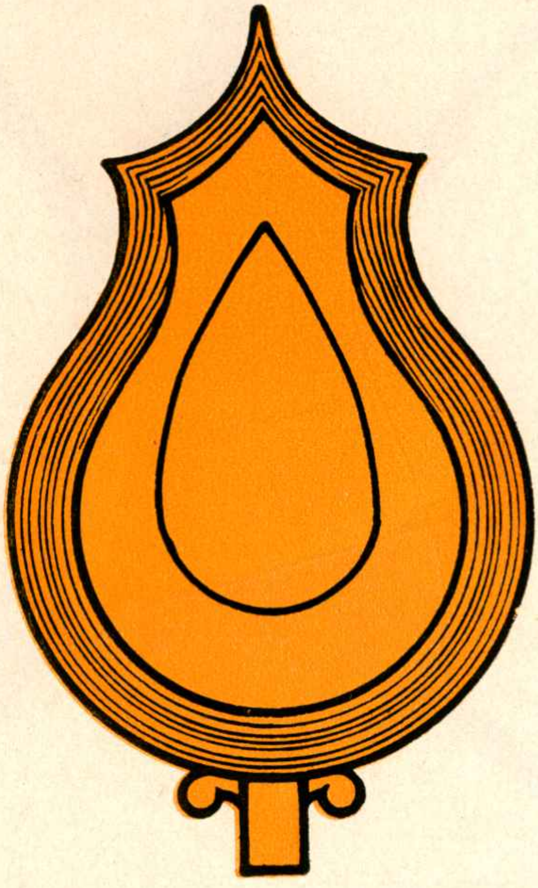
यजमानपात्री



पलाश अथवा वटवृक्ष से प्राप्त काष्ठ से बनी यह यजमान पात्री दक्षिण वेदि के नीचे यजमाना-सन के दक्षिण भाग में वेदि और आसन के बीच भाग में रखी रहती थी। इसे 'अरत्नि' (कोहनी से कनीनिका के अग्रभाग का लगभग १८" का अंतराल) माप का कहा गया है। यह योषाकारा होती थी। 'आज्या' इसमें रखी जाती थी।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

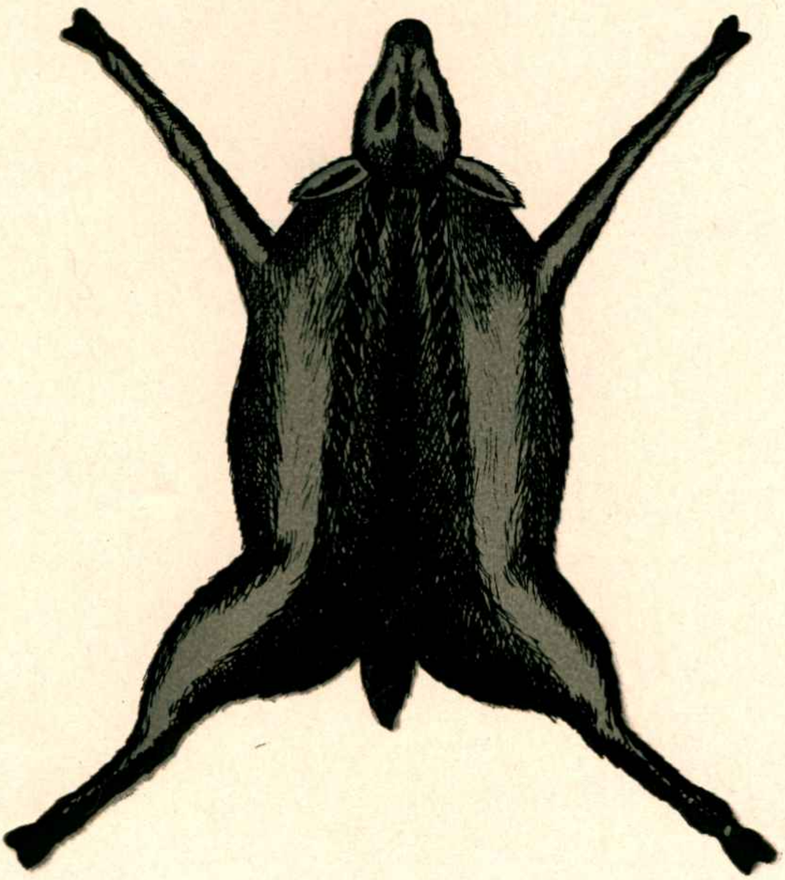
पत्नीपात्री



यजमानपात्री की तरह पत्नीपात्री भी पलाश अथवा वटवृक्ष से प्राप्त काष्ठ से बनती थी। दक्षिणावेदि में पत्न्यासन के दाहिने "पत्नीपात्री" जो 'यजमानपात्री' से आकार में अधिक वर्तुल और त्र्यङ्गुला होती थी—रखी रहती थी। इसका अग्रभाग शङ्कुक होता था। इसमें 'आज्या' रखी रहती थी। यह गर्भाशयाकारा होती थी।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

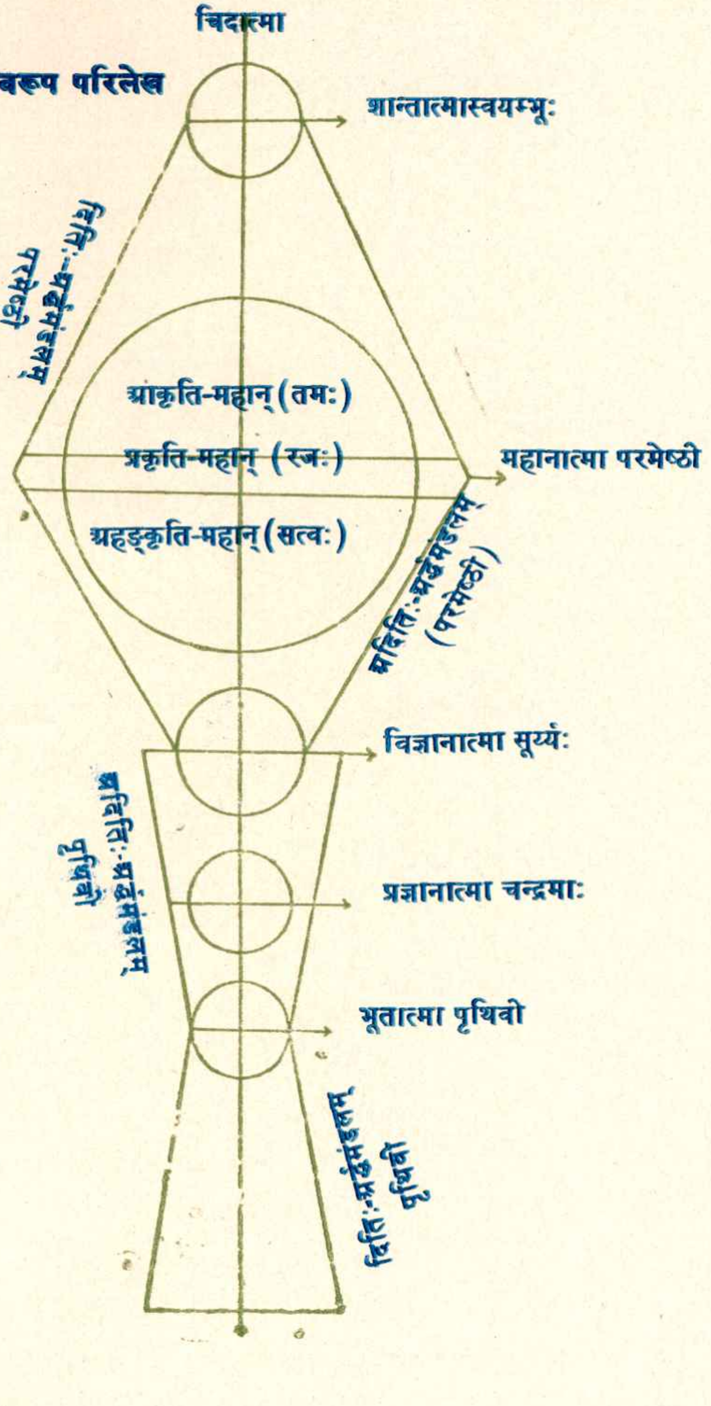
कृष्णाजिनम् (कृष्णमृगचर्म्म)



काले हरिण के चर्म्म का नाम ही कृष्णाजिन है। इस चर्म्म में चारों पैर और ग्रीवायुक्त शिरोभाग होना चाहिए। अर्थात् पूरा (सम्पूर्ण) मृगचर्म्म होना चाहिए। कितनों ही के मतानुसार ग्रीवा-रहित का भी ग्रहण होता है। ऊखल में मूसल से व्रीहि कूटे जाते हैं, तो उस समय मूसल के आघात से बाहर उछटे हुए हवि की रक्षा के लिए कृष्णमृगचर्म्म को ऊखल के नीचे बिछाया जाता है। कृष्णाजिन वेदत्रयीरूप होने से यज्ञस्वरूप है। व्रीहि यज्ञिय द्रव्य है। यज्ञिय द्रव्य का अयज्ञिय स्थान से स्पर्श न हो, इसीलिए ऊखल के नीचे यज्ञरूप कृष्णमृगचर्म्म को बिछाना आवश्यक हो जाता है। इस पर उछट कर गिरा हुआ हविर्द्रव्य यज्ञ पर ही प्रतिष्ठित रहता है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

महानात्मविवर्त्तत्रयोस्वरूप परिलेख



महापृथिवी-स्वरूपपरिलेखः—

दशम-रेखाचित्र

(पृ० सं० ५८०)

१०—पोषाण्डानुगतः—

भूपिण्डः—
पोषाण्डः

पृथिवी	संख्या	नाम	स्तोम	अङ्क	विवरण	क्रम
युग्मस्तोमात्मिका महापृथिवी १	१	संयतीत्रैलोक्य जगती	अष्टाचत्वारिंशः	४८	अग्नि–सोम–इन्द्र–विष्णुरक्षरगर्भितः–ब्रह्माक्षरप्रधानः–जग	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
	२	क्रन्दसीत्रैलोक्य त्रिष्टुप्	चतुश्चत्वारिंशः	४४	अग्निसोमेन्द्रगर्भितः–विष्ण्वक्षरप्रधानः–त्रिष्टुप्छन्दितः–छ	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
	३	रोदसीत्रैलोक्य गायत्री	चतुर्विंशः	२४	अग्निसोमगर्भितः–इन्द्राक्षरप्रधानः–गायत्रीछन्दितः–स्तोमः(रोदसी	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
वाक्वषट्काररूपा — वषट्कारात्मिका २ — षट्स्तोमात्मिका पृथिवी	१	सागराम्बरा	चतुस्त्रिंशः	३४	अग्निवाय्वादित्यभास्वरसोमदिक्सोमगर्भितः–न्ना अयुग्मस्तोम–३४–रूपा–सैषा सागरा	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
	२	मेदिनी	त्रयस्त्रिंशः	३३	अग्निवाय्वादित्यभास्वरसोमगर्भिता–दिक्सोममयी पृथिवी	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
	३	सौम्या	त्रिणवः	२७	अग्निवाय्वादित्यगर्भिता भास्वरसोममयी पृथिवी सौम्या	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
	४	आदित्या	एकविंशः	२१	अग्निवायुगर्भिता आदित्यमयी पृथिवी यशोरूपा–एकविंशः	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
	५	वायव्या	पञ्चदशः	१५	अग्निगर्भिता वायुमयी पृथिवी–पञ्चदशः (१५)	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
	६	आग्नेयी	त्रिवृतः	९	अग्निमयी पृथिवी–त्रिवृतः (९)	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

यशोण्डः—त्रिवृत्-पञ्चदश—एकविंशस्तोमावच्छिन्नः पार्थिवः

न–इन्द्र–विष्णुरक्षरगर्भितः–ब्रह्माक्षरप्रधानः–जगतीछन्दश्छन्दितः–छन्दोमास्तोमः–युग्मस्तोमः–(संयतीलोकात्मिका पृथिवी–जगती) (४८)

द्रगर्भितः–विष्ण्वक्षरप्रधानः–त्रिष्टुप्छन्दितः–छन्दोमास्तोमः–युग्मस्तोमः (क्रन्दसीलो कात्मिका पृथिवी–त्रिष्टुप्– (४४)

तः-इन्द्राक्षरप्रधानः-गायत्रीछन्दितः-स्तोमः(रोदसीपृथिवीगायत्री)-(२४)

ग्निवाय्वादित्यभास्वरसोमदिक्सोमगर्भितः–आपोमयः प्रजापतिः पार्थिवः चतुस्त्रिंशः (३४)
अयुग्मस्तोम–३४–रूपा–सैषा सागराम्बरा महापृथिवी आपोमयी

दित्यभास्वरसोमगर्भिता–दिक्सोममयी पृथिवी सागराम्बरा त्रयस्त्रिंश (३३) अयुग्मस्तोमः

आदित्यगर्भिता भास्वरसोममयी पृथिवी सौम्या मेदिनी–त्रिणवः (२७)

र्भिता आदित्यमयी पृथिवी यशोरूपा–एकविंशः (२१)

ता वायुमयी पृथिवी–पञ्चदशः (१५)

पृथिवी–त्रिवृतः (९)

स्तोमावच्छिन्नः

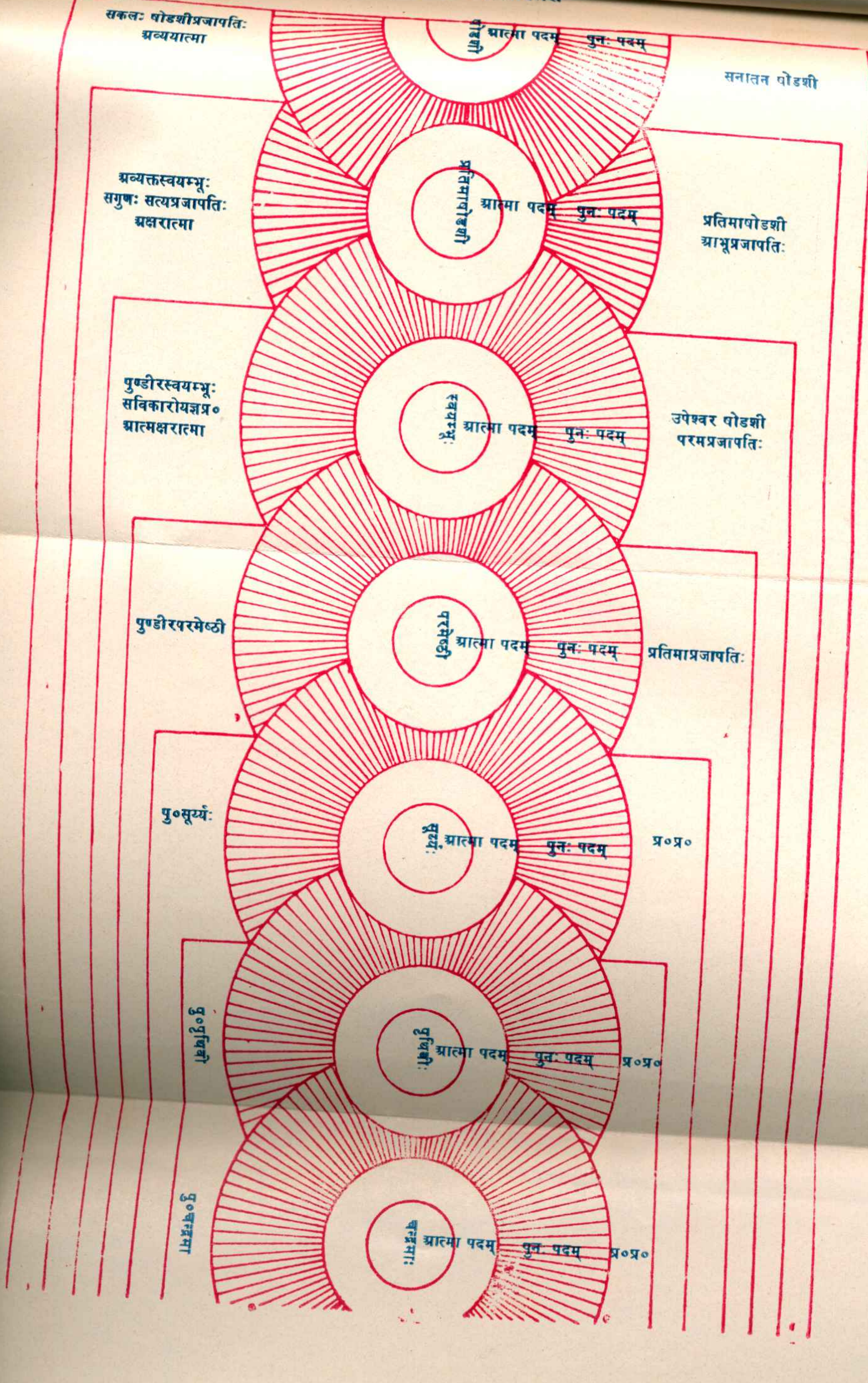
रेतोऽण्डः–त्रिणवस्तोमा–
वच्छिन्नः–पार्थिवः

हिरण्मयाण्डः–त्रयस्त्रिंशस्तोमा–
वच्छिन्नः–पार्थिवः

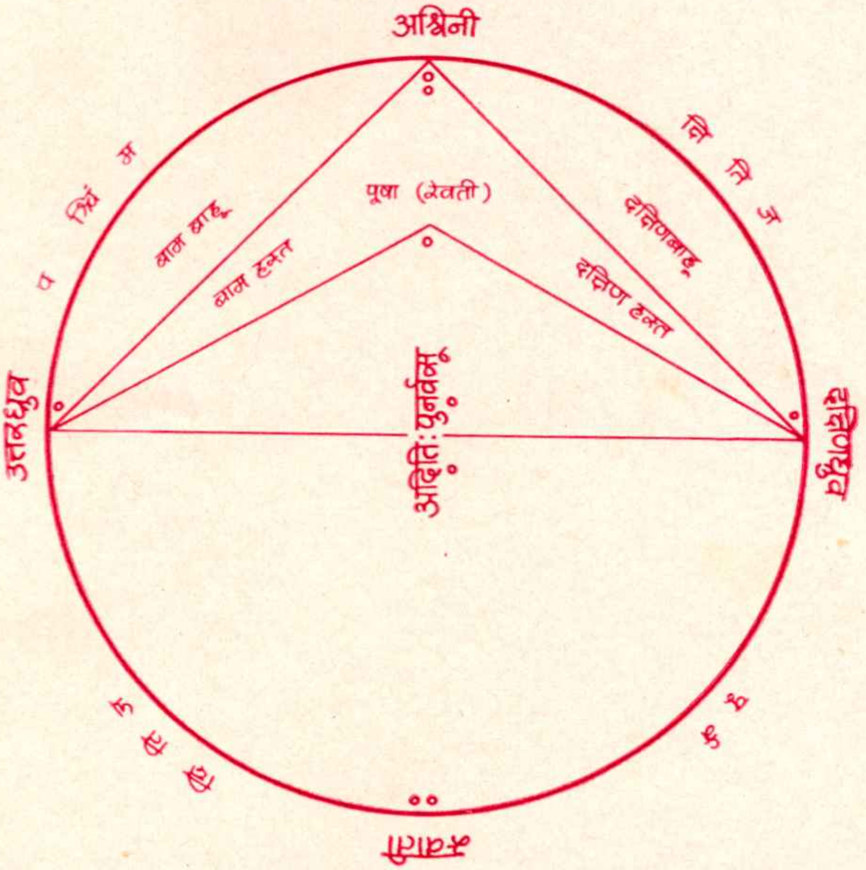
अप्स्वण्डः–अष्टाचत्वारिंशस्तोमावच्छिन्नः
पार्थिवः

तदित्थं भूपिण्डः–पिण्डमहिमालक्षणपृथिवीमण्डले–अष्टाचत्वारिंशस्तोमात्मके–
एवं ४८–३३–२७–२१–भूपिण्डरूपेण–
अप्स्वण्ड–हिरण्मयाण्ड–रेतोऽण्ड–यशोऽण्ड–पीयाण्डनामुपभोगः
"यथा ब्रह्माण्डे–तथा पृथिवीलक्षणे–भूपिण्डे"
सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्याहुर्नैगमिकाः

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।


सकलः षोडशीप्रजापतिः
अव्ययात्मा
षोडशी
आत्मा पदम्
पुनः पदम्
सनातन षोडशी
अव्यक्तस्वयम्भूः
सगुणः सत्यप्रजापतिः
अक्षरात्मा
प्रतिमाषोडशी
आत्मा पदम्
पुनः पदम्
प्रतिमाषोडशी
आभूप्रजापतिः
पुण्डीरस्वयम्भूः
सविकारोयज्ञप्र०
आत्मक्षरात्मा
स्वयम्भूः
आत्मा पदम्
पुनः पदम्
उपेश्वर षोडशी
परमप्रजापतिः
पुण्डीरपरमेष्ठी
परमेष्ठी
आत्मा पदम्
पुनः पदम्
प्रतिमाप्रजापतिः
पु०सूर्य्यः
सूर्यः
आत्मा पदम्
पुनः पदम्
प्र०प्र०
पु०पृथिवी
पृथिवी
आत्मा पदम्
पुनः पदम्
प्र०प्र०
पु०चन्द्रमा
चन्द्रमाः
आत्मा पदम्
पुनः पदम्
प्र०प्र०

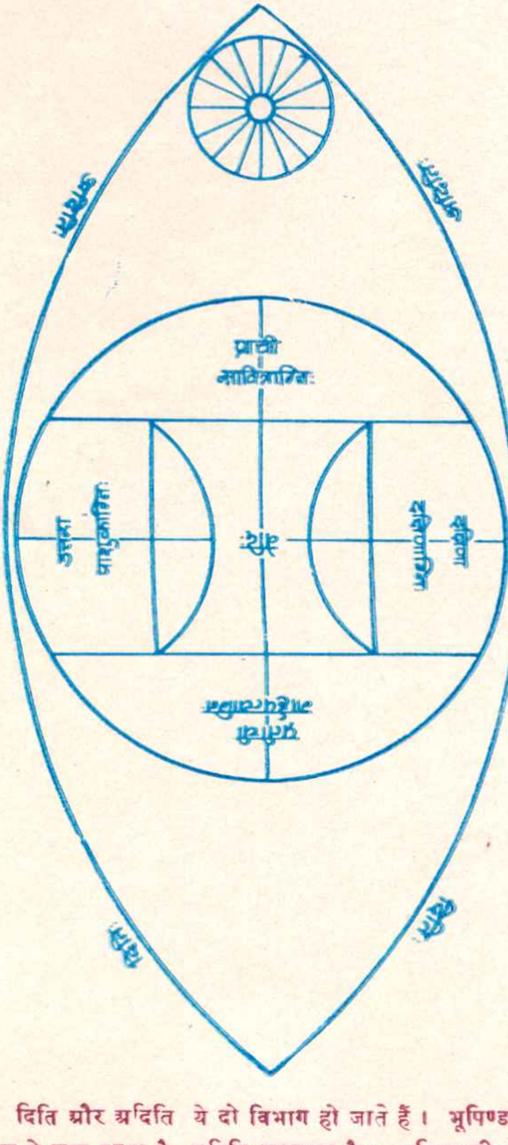
अदितिमण्डलपरिलेखः



सूर्य्यं के सम्मुख पृथिवी का जो दीप्त-भाग रहता है, वही अदिति कहलाता है। 'देवसा त्वा सवितुः' इत्यादि मन्त्र अदितिमय यज्ञमण्डल का ही निरूपण करता है। एक ओर 'स्वाती नक्षत्र' है, दूसरी ओर 'अश्विनी नक्षत्र'। स्वाती और अश्विनी नक्षत्रों के मध्य में 'रेवती नक्षत्र' है। आकाश का यह प्रदेश ही अदिति मण्डल है। इस मण्डल के ठीक ख-स्वस्तिक में (मध्य में) अदिति है। इस मध्य स्थान पर 'पुनर्बसु नक्षत्र' है। पुनर्वसु नक्षत्र के तृतीय चरण पर ही अदिति-बिन्दु है। पूर्व में स्वाती नक्षत्र पर्य्यन्त इसकी व्याप्ति है। पश्चिम में अश्विनी–रेवती नक्षत्र की मध्य-बिन्दु पर्य्यन्त व्याप्ति है। इस देवमण्डल में स्वाती से रेवती पर्य्यन्त १३॥ नक्षत्रों का भोग है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

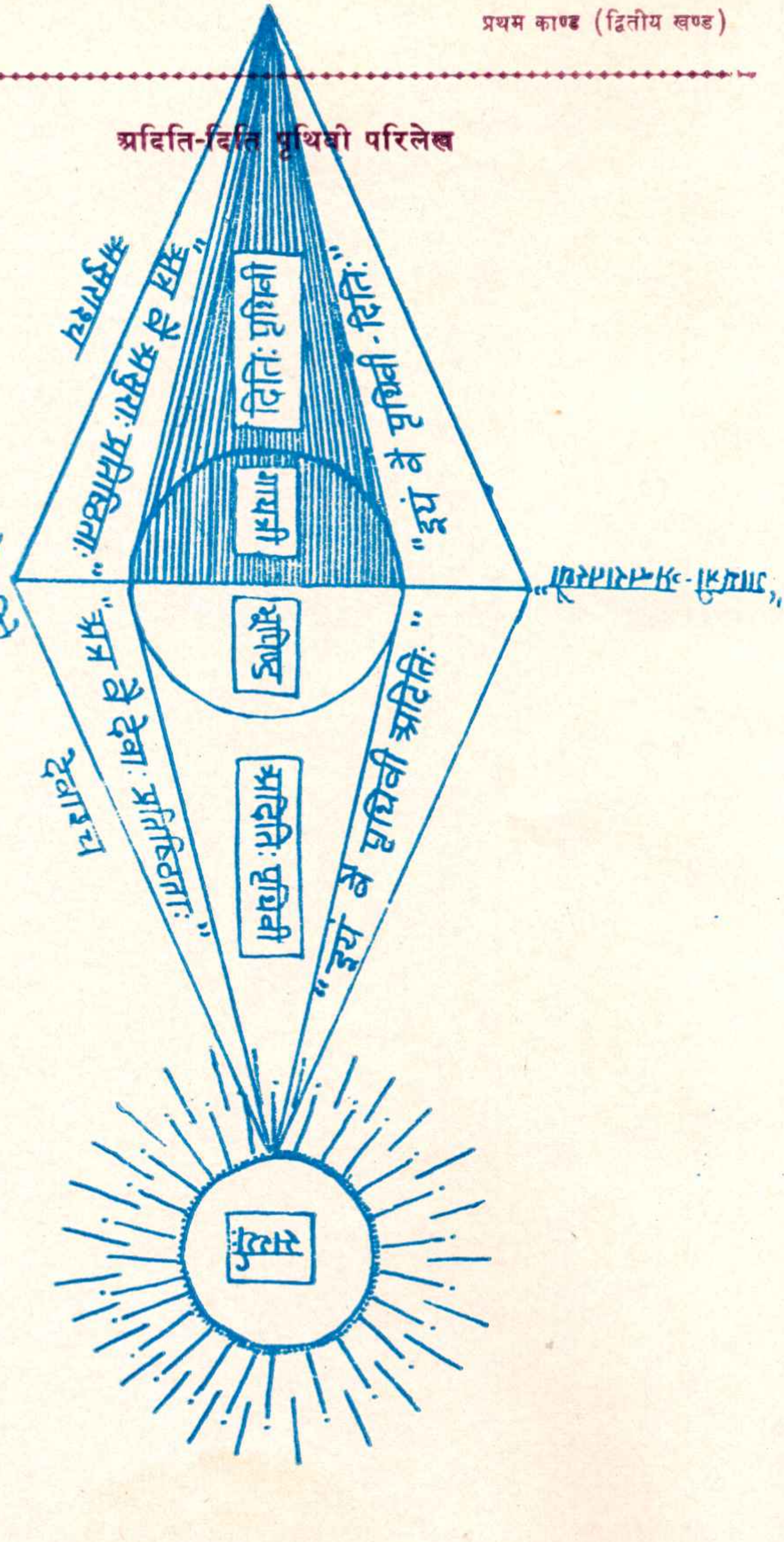
अदिति-दिति यज्ञमण्डलात्मक परिलेख



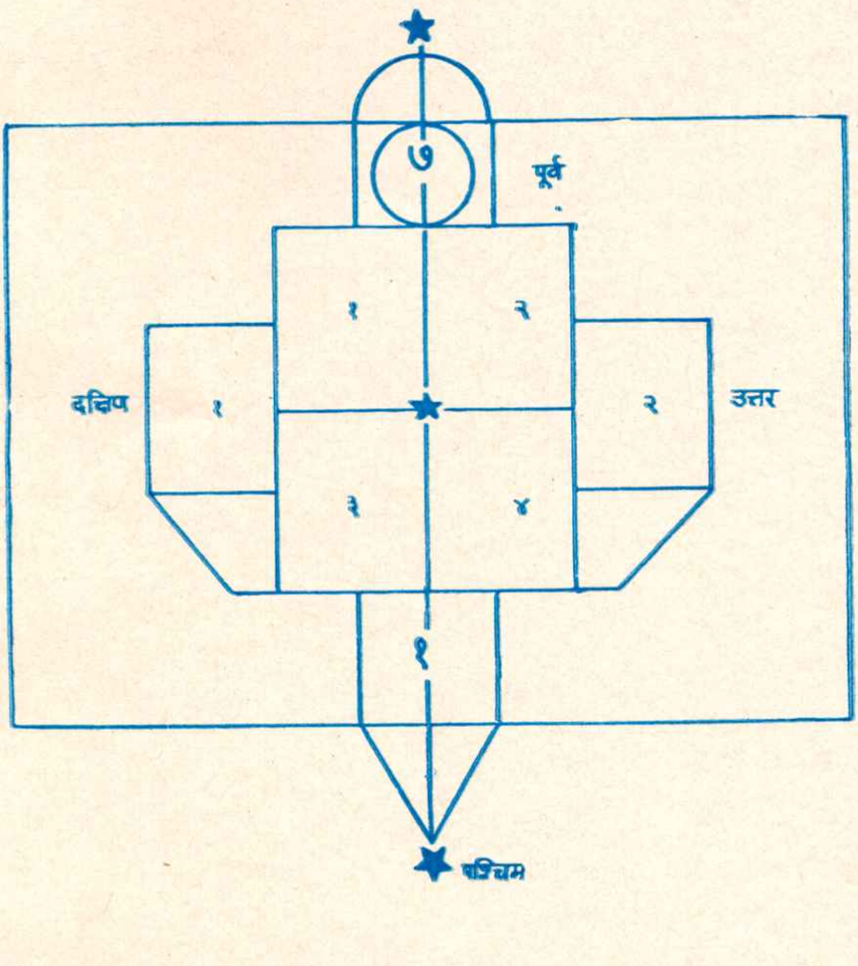
एक ही भूपिण्ड दिति और अदिति ये दो विभाग हो जाते हैं। भूपिण्ड का वह अर्द्ध प्रदेश जो सूर्य्य के ज्योतिर्म्मय प्राण से मुक्त रहता है, अदिति कहलाता है। भूपिण्ड की दोनों परिधियों का स्पर्श करता हुआ सौरप्रकाश आगे निकल जाता है। इससे सूर्य्यविमुख भूपिण्ड पर प्रकाश नहीं जा पाता है। इसी तमोमय भाग का नाम दिति पृथिवी है। जहाँ तक छन्दोवेष्टित यज्ञमूर्ति विष्णु व्याप्त हुए, वह यज्ञिय प्रदेश कहलाया है। वही प्रदेश "एतेन (यज्ञमूर्तिविष्णुना) इमां सर्वां समविन्दन्त" इस निर्वचन के अनुसार याज्ञिकों के समय में 'वेदि' नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

अदिति-दिति पृथिवी परिलेख



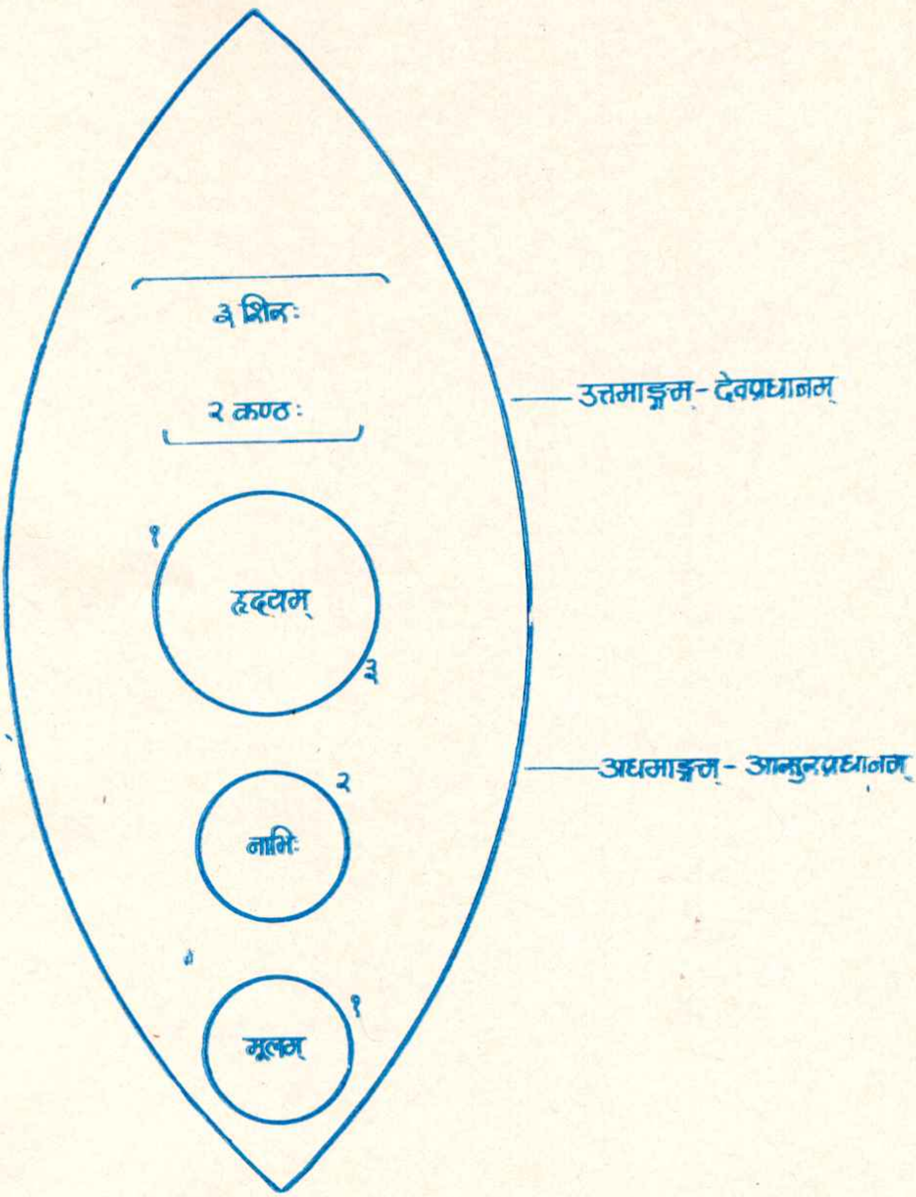
चित्यपुरुष परिलेख



भूतभौतिकी सृष्टि का प्रमुख आधार 'सप्तर्षि' नामक प्राणविशेष ही बना करता है, जिसके सात अवयवों के '४-२-१' इस क्रम से तीन विभाग माने गए हैं। ये ही तीनों विभाग क्रमशः "चत्वार आत्मा, द्वौ-पक्षौ, पुच्छं प्रतिष्ठा" रूप से उपवर्णित हैं। चार प्राणों की समष्टि ही 'चत्वार आत्मा' है। दो प्राणों की समष्टि दो पक्ष हैं, एवं एक प्राण प्रतिष्ठात्मक पुच्छंभाव है। उक्त परिलेख के मध्य के चार चित्य-प्राण, दक्षिण-उत्तर-पार्श्वों के दो चित्यप्राण, पश्चिमानुगत एक चित्यप्राण, इन सातों चित्यप्राणों की समष्टि का ही नाम चित्यपुरुष है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

देव–आसुर त्रिलोकी परिलेख

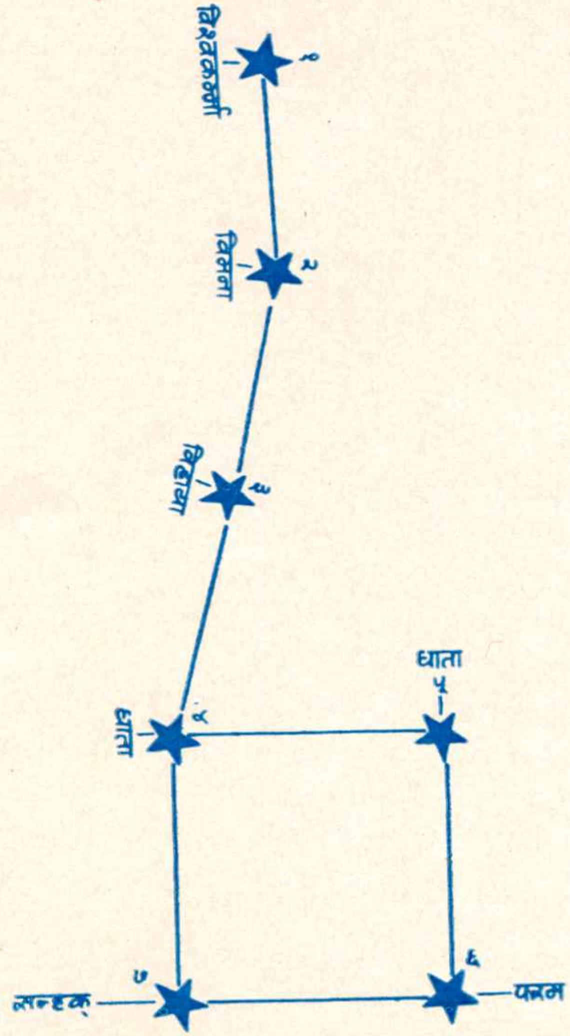


दैव त्रिलोकी		
शिरः	—	द्यौः
कण्ठः	—	अन्तरिक्षम्
हृदयम्	—	पृथिवी

आसुर त्रिलोकी		
मूलस्थानम्	—	द्यौः
नाभिः	—	अन्तरिक्षम्
हृदयम्	—	पृथिवी

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

सप्ततारामण्डल परिलेख

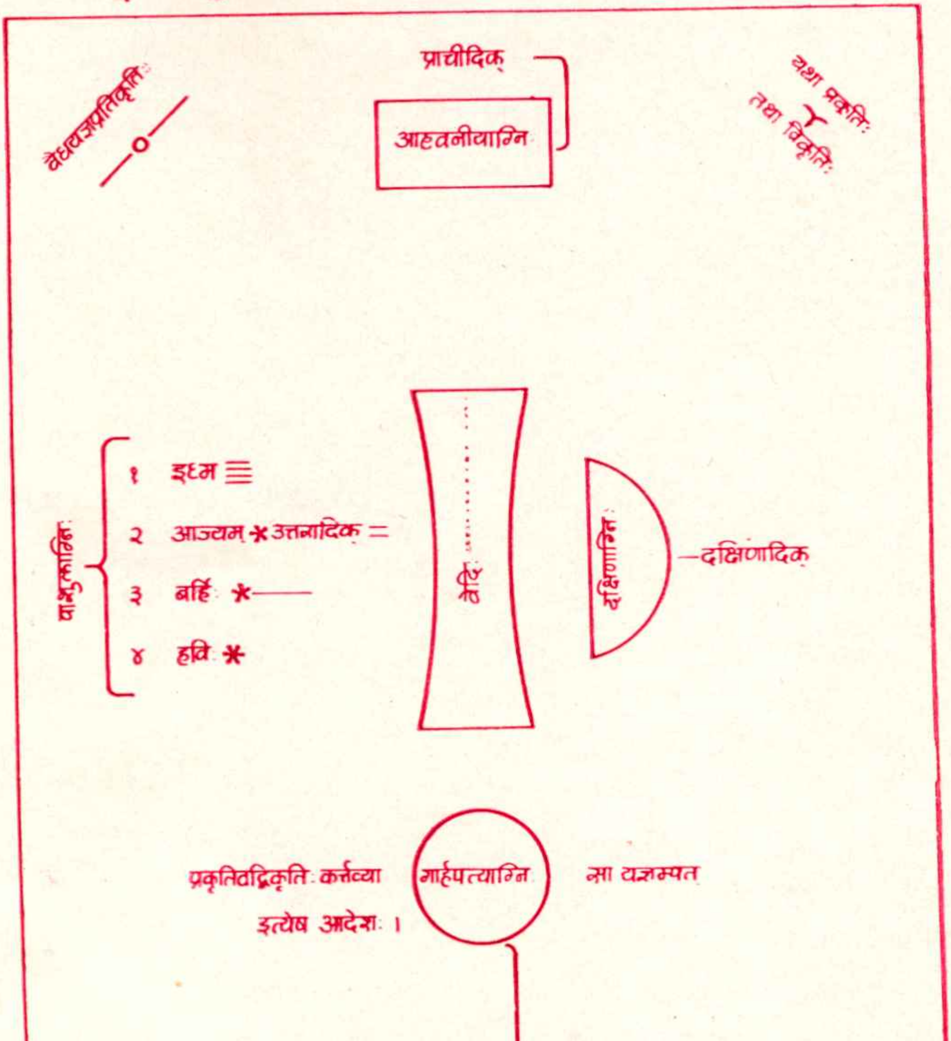


आज जिस स्थान पर ध्रुव है, वहाँ सात तारे हैं। जो सन्निवेशक्रम सप्तर्षिमण्डल का है, वही सन्निवेशक्रम इन सात तारों का है। कहीं-कहीं ब्राह्मणग्रन्थों में इन्हें 'ऋक्षपत्नी' नाम से भी व्यवहृत किया गया है। इन्हीं सातों का निरूपण करती हुई मन्त्रश्रुति कहती है—

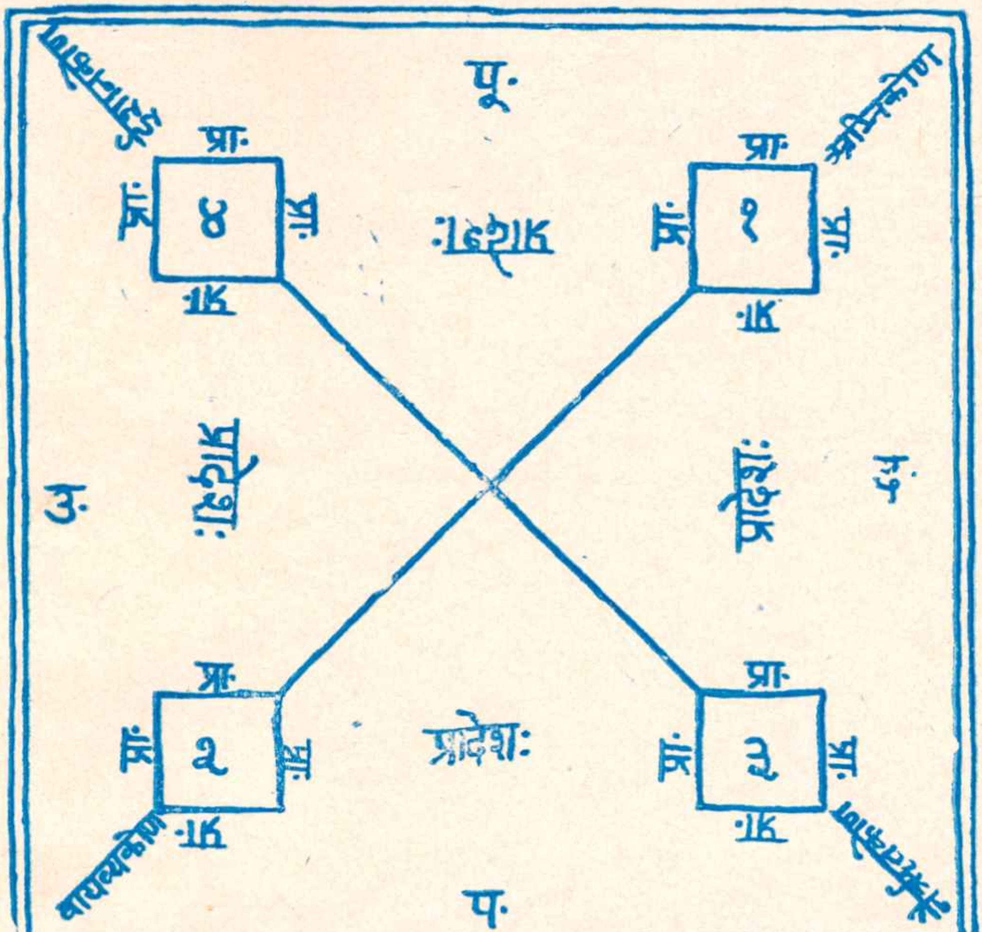
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
विश्वकर्म्मा, विमना, आद्विहाया, धाता, विधाता, परमोत, सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः ॥
(ऋग्वेद मं० १०।८२।२)

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

वैधयज्ञवेदिपरिलेखः—



दिक् परिलेख



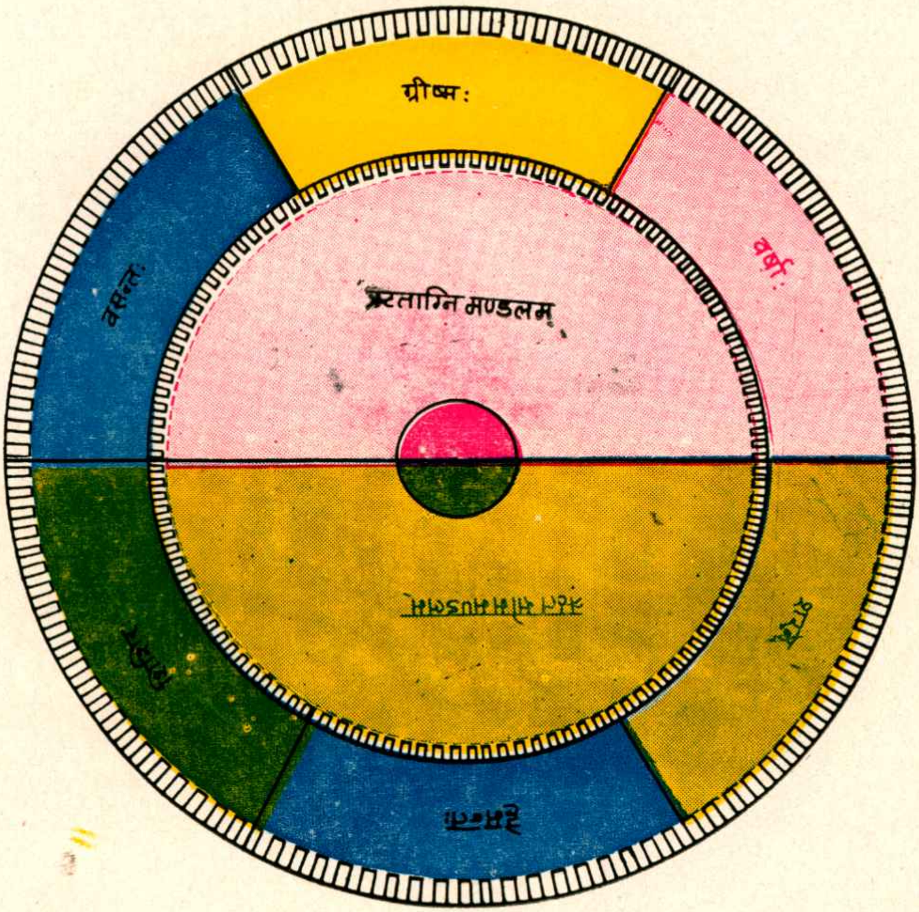
प्रस्तुत परिलेख में अग्नि–नैऋत–वायव्य–ईशान ये चार कोण बतलाए गए हैं। इन्हीं कोणों से चार प्रादेश निष्पन्न होते हैं एवं यज्ञ में जो चार उपरव बनाए जाते हैं उनका आधार भी यही चारों कोण हैं। ये चारों उपरव प्रादेशमित (१०॥ अंगुल) के अन्तर पर बनाए जाते हैं।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

गीताविज्ञानभाष्यभूमिका

कर्म्मयोगपरीक्षा

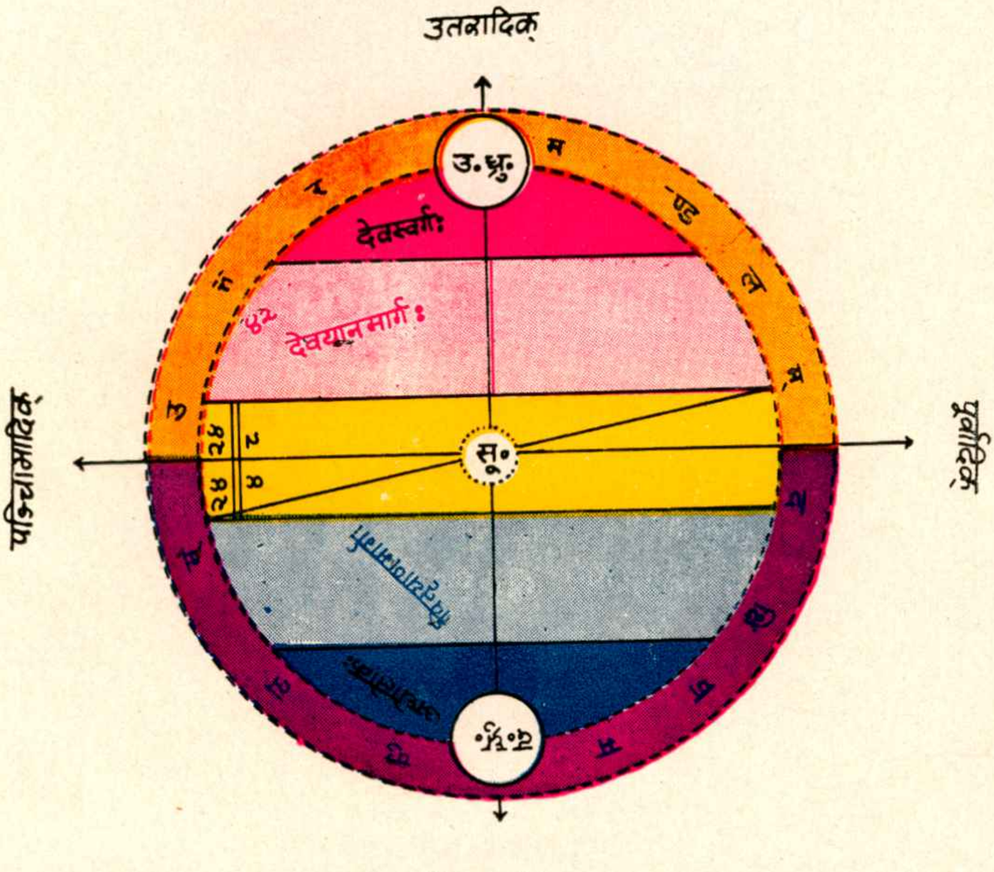
षड्ऋतु मण्डल परिलेखः-



उत्तर दिशा से निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर आते हुए वायव्य ऋताग्नि में ऋतसोम निरन्तर आहुत होता रहता है। इसी आहुति से (ऋतसोम तथा ऋताग्नि के यागलक्षण यज्ञ सम्बन्ध से) ऋतु नामक अपूर्व पदार्थ उत्पन्न होता है। इसी ऋतु की, अग्नि-सोम के तारतम्य से, **वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शरत्-हेमन्त-शिशिर** नामक ६ अवस्थाएँ हो जाती हैं। इनमें से वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा ऋतुएँ अग्नि के प्राधान्य से देवप्राणात्मिका मानी गई हैं। शरत्-हेमन्त-शिशिर ऋतुओं को सोम की प्रधानता के कारण पितृ-प्राणात्मिका माना गया है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

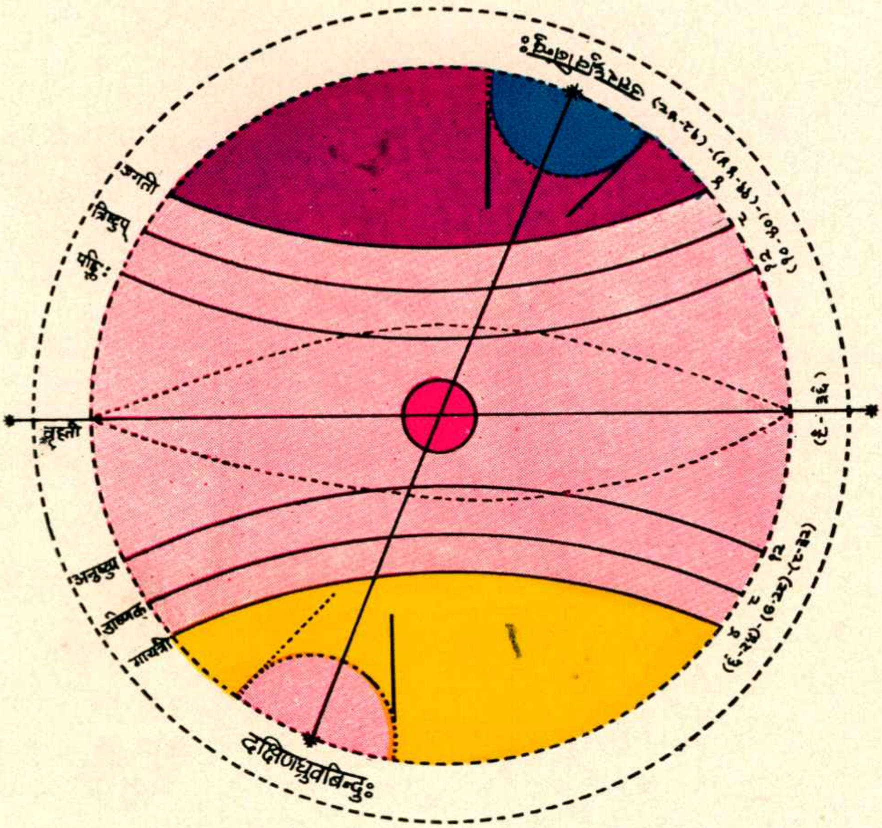
लोकमण्डलपरिलेखः-



मध्यस्थ विष्वद्वृत्त से २४ अंश उत्तर एवं २४ अंश दक्षिण, कुल ४८ का यह परिसर पितृत्रिलोकी के अनुसार **'भूलोक'** कहलाता है। पार्थिव सृष्टि का सम्बन्ध इसी परिसर के साथ माना गया है। उत्तर गोल के ९० अंश पर रहने वाले ध्रुव पर्य्यन्त ६६ अंश शेष रह जाते हैं। ६६ अंश ही विष्वद् से दक्षिण गोल में शेष रहते हैं। उत्तर भागात्मक ६६ अंशों के ४२–२४ के दो भाग माने गये हैं, जो कि क्रमशः **देवयान मार्ग** (अन्तरिक्ष लोक) एवं ध्रुवानुगत **देवस्वर्ग** (द्युलोक) कहे गये हैं। इसी प्रकार दक्षिण में ६६ अंशों के ४२–२४ इन दोनों भागों को क्रमशः **पितृयाण मार्ग** एवं **अधोलोक** (नरक) कहा गया है। इस प्रकार १८० अंशात्मक अर्द्धखगोल में **भूलोक–देवयान–देवस्वर्ग–पितृयाण–अधोलोक** ये पाँच विभाग हो जाते हैं; जैसाकि परिलेख से स्पष्ट है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

सप्ताहोरात्रवृत्त परिलेख

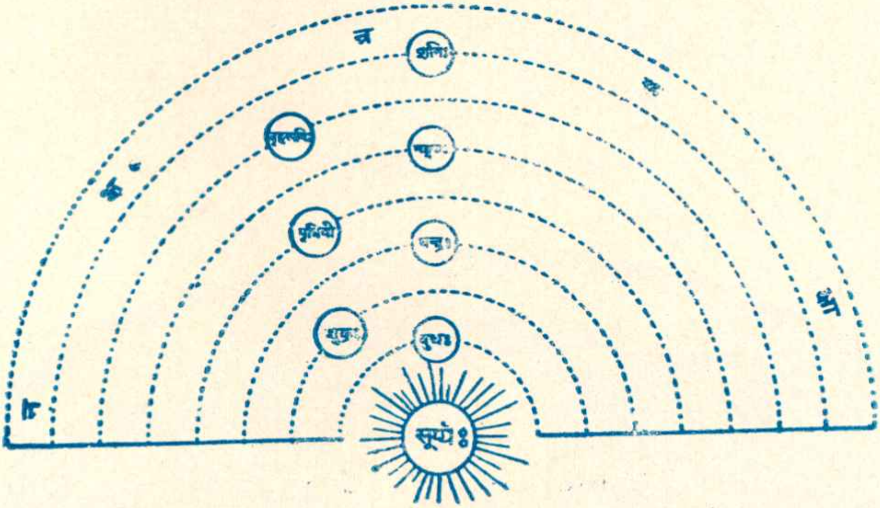


अहोरात्रवृत्त परिलेख:-

उक्त परिलेख में ४८ अंशात्मक जिस मध्य परिसर का दिग्दर्शन कराया गया है, उसकी प्रतिष्ठा विष्वद्वृत्त माना गया है। विष्वद्वृत्त से उत्तर की ओर १२–८–४ अंश पर तीन पूर्वापरवृत्त माने गये हैं। इसी प्रकार दक्षिण की ओर १२–८–४ अंश पर तीन वृत्त बतलाये गये हैं। इस प्रकार ६ वृत्त बन जाते हैं। सातवाँ प्रतिष्ठारूप स्वयं विष्वद्वृत्त होता है। यही सातों वृत्त वैदिक परिभाषा में (दक्षिण से उत्तर की ओर के क्रम से) क्रमशः **१–गायत्री**, **२–उष्णिक्**, **३–अनुष्टुप्**, **४–बृहती**, **५–पङ्क्ति**, **६–त्रिष्टुप्**, **७–जगती** नामों से व्यवहृत हुए हैं। ये सातों वृत्त अर्थात् सातों छन्द ही ७२० अहोरात्रों (३६० दिन एवं ३६० रात्रियों) के जनक बनते हैं। अतएव इन्हें **'अहोरात्रवृत्त'** भी कहा जाता है। छन्दोविज्ञान के अनुसार उक्त सातों छन्द क्रमशः, ६–७–८–९–१०–११–१२ अक्षर संख्याओं में विभक्त हैं। प्रत्येक छन्द के ४–४ चरण होते हैं अतएव प्रत्येक छन्द की क्रमशः २४–२८–३२–३६–४०–४४–४८ अक्षर-संख्या हो जाती है।

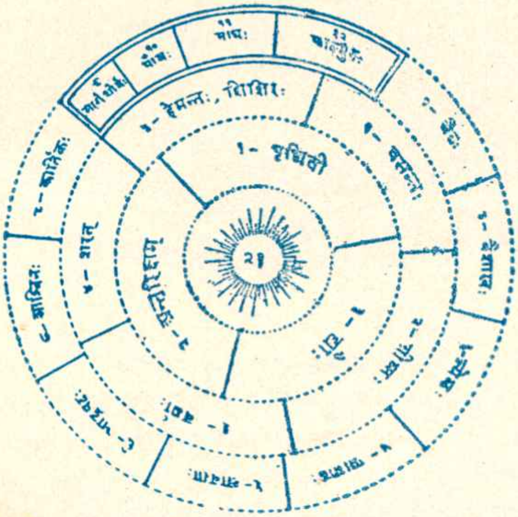
श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

ग्रह परिलेख



सूर्य्य के चारों ओर बुध परिक्रमा लगाता है, बुध के अनन्तर शुक्र, शुक्र के अनन्तर सचन्द्रा पृथिवी, पृथिवी के अनन्तर मङ्गल, तदनन्तर बृहस्पति, तदनन्तर शनि की परिक्रमा होती है। सर्वान्त में नक्षत्र-मण्डल है। इन विवर्तों में से सूर्य्य, तथा पृथिवी, ये दोनों तो सम्वत्सर के स्वरूप में ही अन्तर्भुक्त है। शेष सात वृत्त बच जाते हैं। ये ही सप्त नाड़ीवृत्त माने गए हैं।

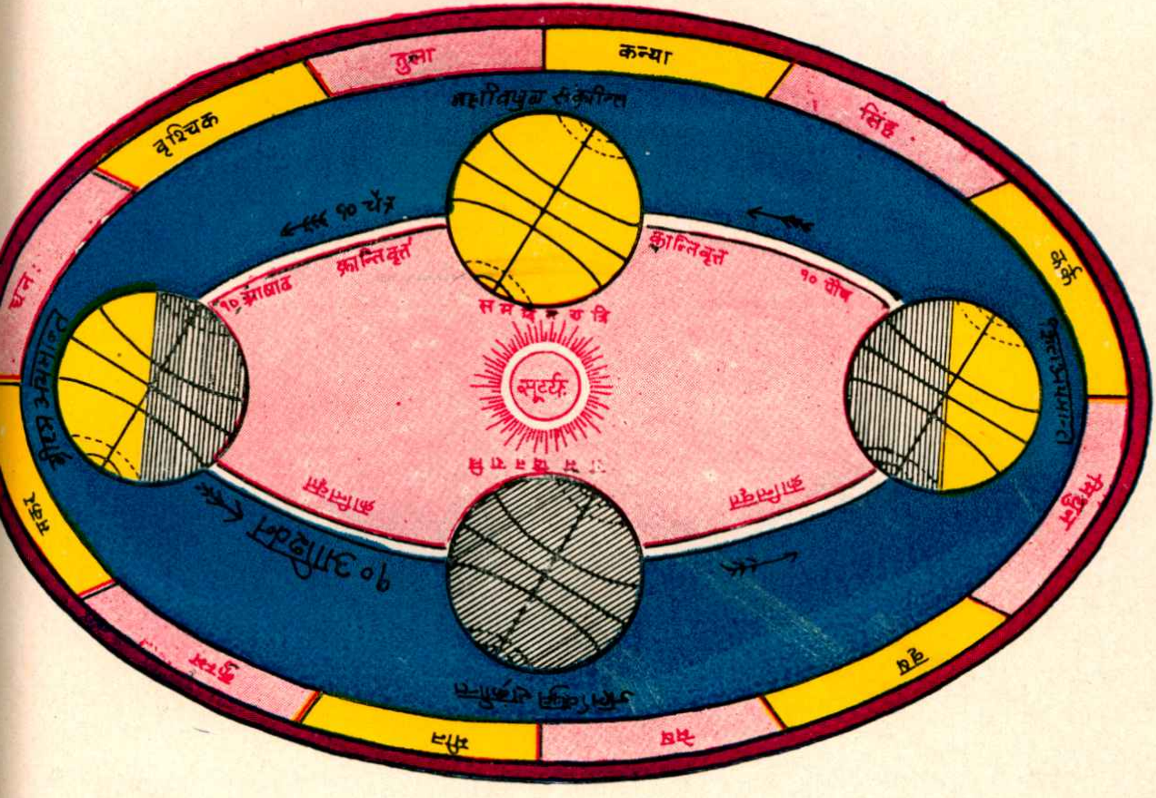
सम्वत्सर यज्ञ परिलेख



सम्वत्सर यज्ञ के २१ पर्व बतलाए गए हैं। इस के अतिरिक्त सम्वत्सर यज्ञ में ३ लोक, ५ ऋतुएँ और १२ मासों की निष्पत्ति और होती है। यद्यपि ऋतुएँ ६ बतलाई गई हैं, परन्तु पाङ्क्तयज्ञ के पाँच पर्वों के सम्बन्ध से 'हेमन्तशिशिरयो समासेन' इस श्रुति के अनुसार हेमन्त तथा शिशिर, दोनों को एक ऋतु मानते हुए ७२-७२ दिन की पांच ऋतुएँ मान ली जाती हैं और इस प्रकार ये ३६० दिन १२ मासों में परिणत हो एक वर्ष की निष्पत्ति करते हैं।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

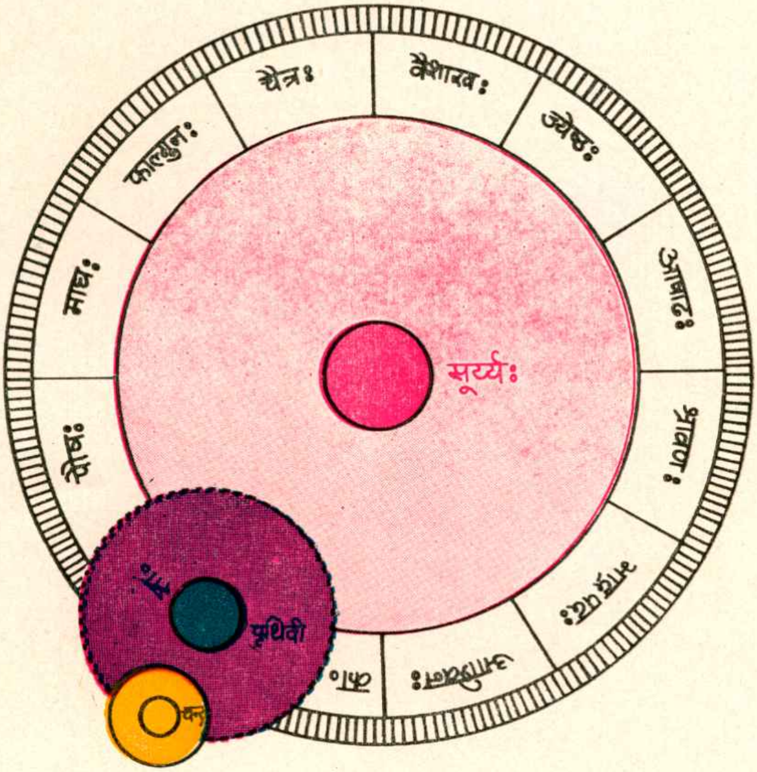
पृथिवी परिभ्रमण परिलेख:-



'सूर्यो बृहती मध्यूढस्तपति' के अनुसार सूर्य्य बृहतीछन्द के केन्द्र पर प्रतिष्ठित है। इस बृहतीछन्द की पूर्वापर दोनों सीमाओं को छूता हुआ, विष्वत् से उत्तर के चौबीसवें, तथा विष्वत् से ही दक्षिण के चौबीसवें अंश से स्पर्श करता हुआ जो एक तिर्य्यक (तिरछा) वृत्त बनता है, वही 'क्रान्तिवृत्त' नाम से प्रसिद्ध है। इसी वृत्त पर पृथिवी अपनी धुरी पर (स्वाक्षपरिभ्रमण से) दैनंदिन गति की अधिष्ठात्री बनती हुई साम्वत्सरिक गति किया करती है। २४ अंशों के उच्चावचभावों से ही यह वृत्त तिर्य्यक् है। क्रान्तिवृत्त के तिर्य्यक् भाव के कारण ही दिन-रात-ऋतु आदि में उच्चावचभाव उत्पन्न होते हैं।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

पृथिवी परिक्रमणा परिलेखः-

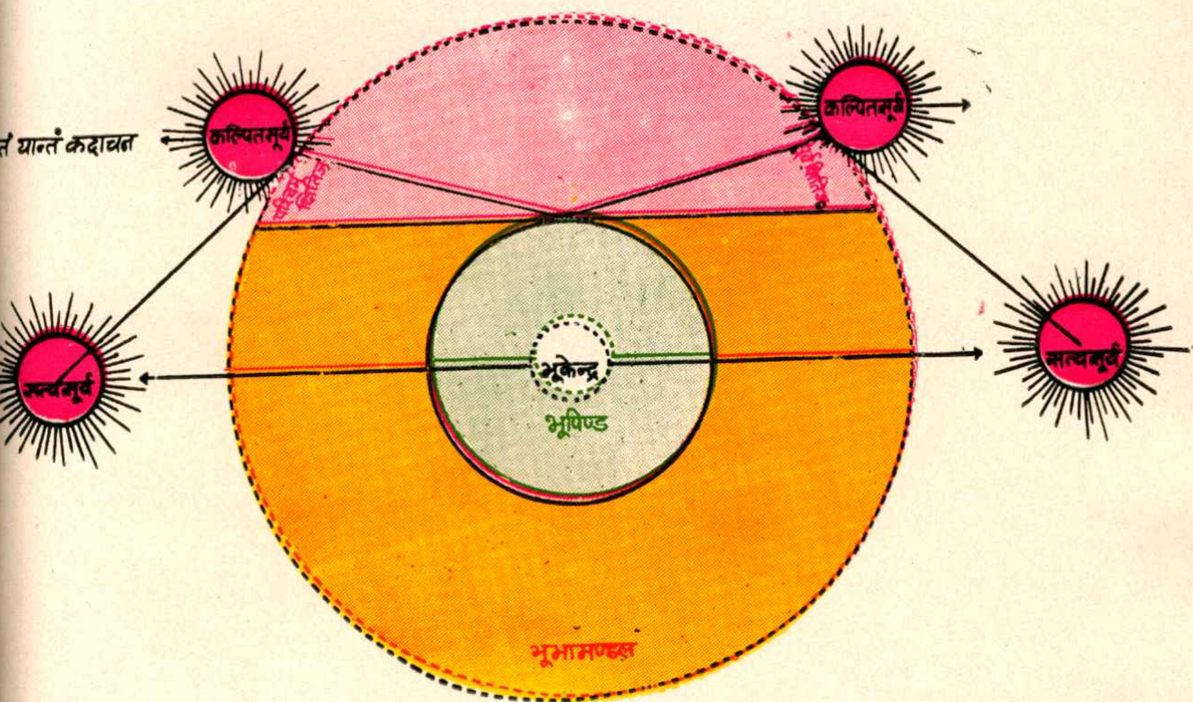


जिस प्रकार पृथिवी के चारों ओर चन्द्रमा परिक्रमा करता है, उसी प्रकार पृथिवी भी चन्द्रमा को साथ लिए हुए सूर्य्य की परिक्रमा करती है। पृथिवी के परिक्रमा-पथ को क्रान्तिवृत्त कहा गया है। चन्द्रमा के परिक्रमा-पथ को 'दक्षवृत्त' कहते हैं। इसी सम्वत्सर-यज्ञ के कारण बारह मासों (३६० दिन) की निष्पत्ति होती है। यही हमारा एक वर्ष कहलाता है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

भूभामण्डल परिलेख

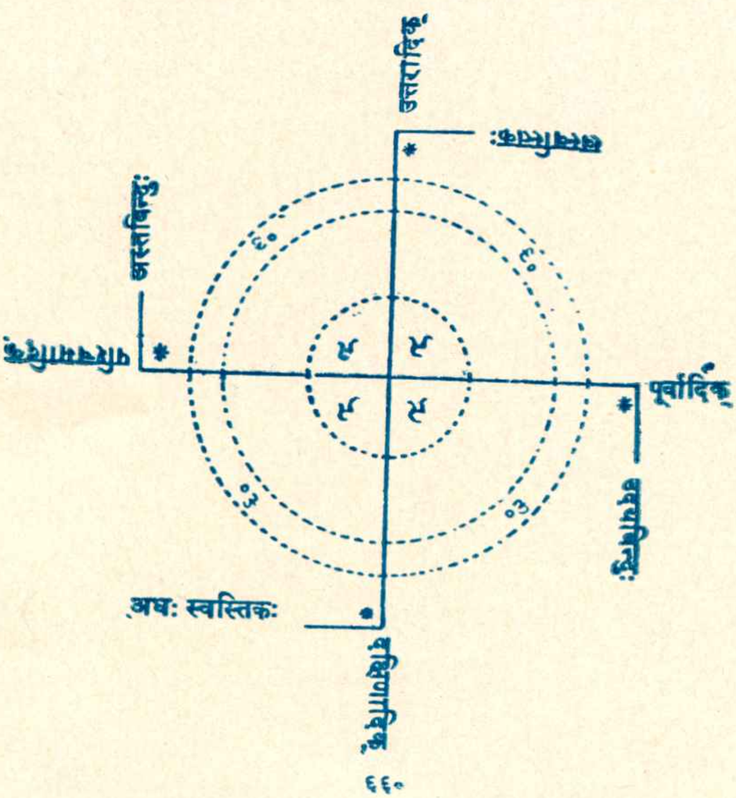
भूभामण्डल परिलेखः-



ऋत पदार्थ का यह स्वभाव है कि, यदि उसके साथ किसी ग्रन्य पदार्थ का सम्बन्ध कराया जाता है, तो उस सम्बद्ध पदार्थ का लम्बन हो जाता है। भूपिण्ड के चारों ग्रोर व्याप्त वायुमयी भूभा भी एक ऋत पदार्थ है। प्रातःकाल ग्राप जिस समय सूर्य्य को पूर्वक्षितिज पर देखते हैं, वस्तुतः वहाँ सूर्य्य नहीं है। इस समय सूर्य्य भूकेन्द्र के सधस्थ पर प्रतिष्ठित रहता है। बात यह है कि, सधस्थ पर प्रतिष्ठित सूर्य्य से रश्मियाँ निकलती हैं। इन रश्मियों का भूभा के साथ सम्बन्ध होता है। भूभा वायुप्रधान होने से जलवत् ऋतपदार्थ है, ग्रतएव इसके साथ सम्बन्ध होने से सूर्य्यरश्मियों का (जलप्रविष्टयष्टिवत्) लम्बन हो जाता है। इस लम्बन से लम्बन सूत्र के सामने 'ऋकृतत्त्व' के आधार पर प्रतिबिम्बात्मक नवीन सूर्य्य (काल्पनिक सूर्य्य) का स्वरूप बन जाता है। इसे ही हम देखा करते हैं, जैसा कि परिलेख से स्पष्ट है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

स्वस्तिक परिलेख

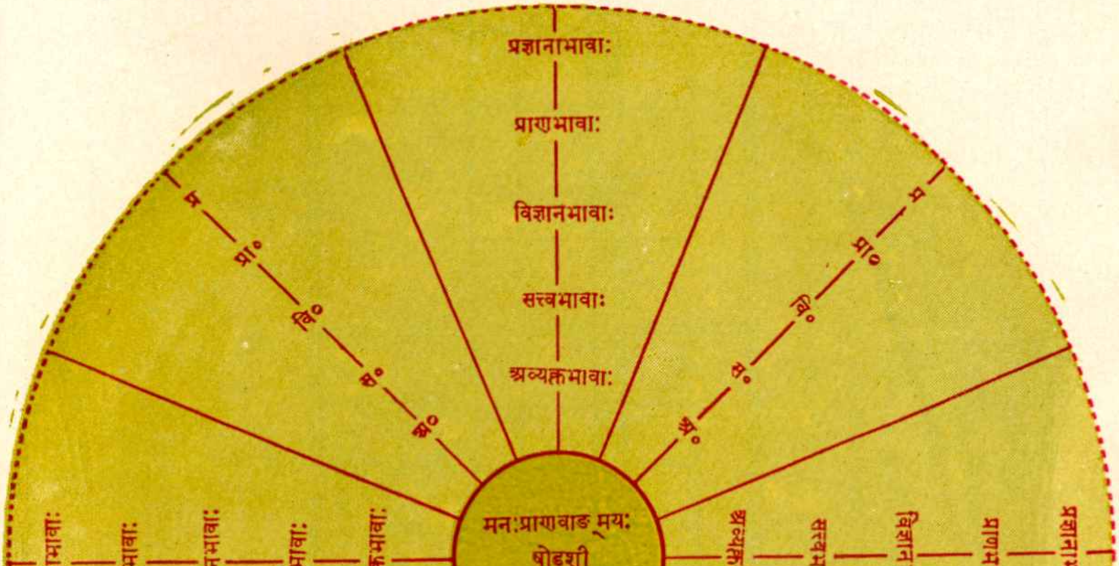


६६०

बृहती छन्द के वितान से ही गायत्री से जगती पर्य्यन्त अन्य छहों छन्दों का वितान हुआ है। यही मध्यप्राणात्मक मुख्य छन्द है। यही 'ख—स्वस्तिक—अधःस्वस्तिक—उदयबिन्दु—अस्तबिन्दु' इन चारों भावों की प्रतिष्ठा है। बृहतीछन्द नवाक्षर है। नवाक्षर बृहतीछन्द की '९-९-९-९' इन चार संस्थाओं की अपेक्षा से बृहतीवृत्त '९०-९०-९०-९०' इन चार भागों में परिणत होता हुआ ३६० अंशों में विभक्त हो जाता है। ये ही ३६० अंश ३६० दिनों के स्वरूप समर्पक बनते हैं। ये ही सम्भूय ७२० अहोरात्रवृत्त बन जाते हैं। इस प्रकार बृहतीछन्द ही अपनी अक्षर-महिमा से अहोरात्र का अधिष्ठाता बन रहा है, जैसा कि परिलेख से स्पष्ट है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

उद्गीथोङ्कार— आध्यात्मिकः सर्वेश्वरः



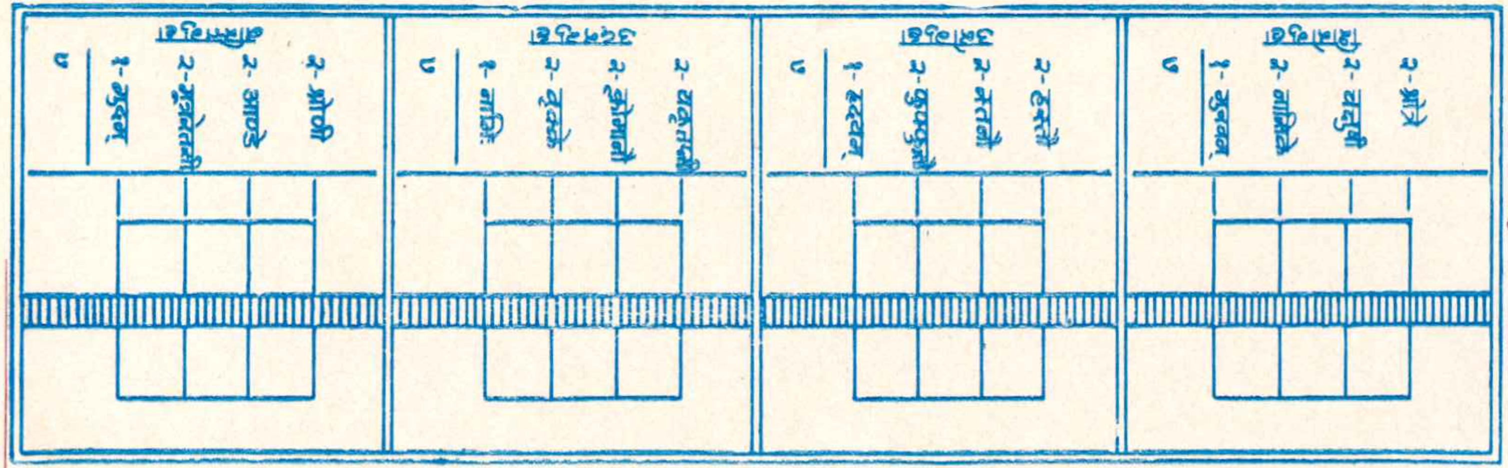
सगुणः षोडशीप्रजापतिः प्रत्यगात्मा

सहस्रभावात्मक (अक्षरः)

(योगमार्गाधिष्ठाता)

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

सप्तप्राण चतुष्टयी परिलेख–

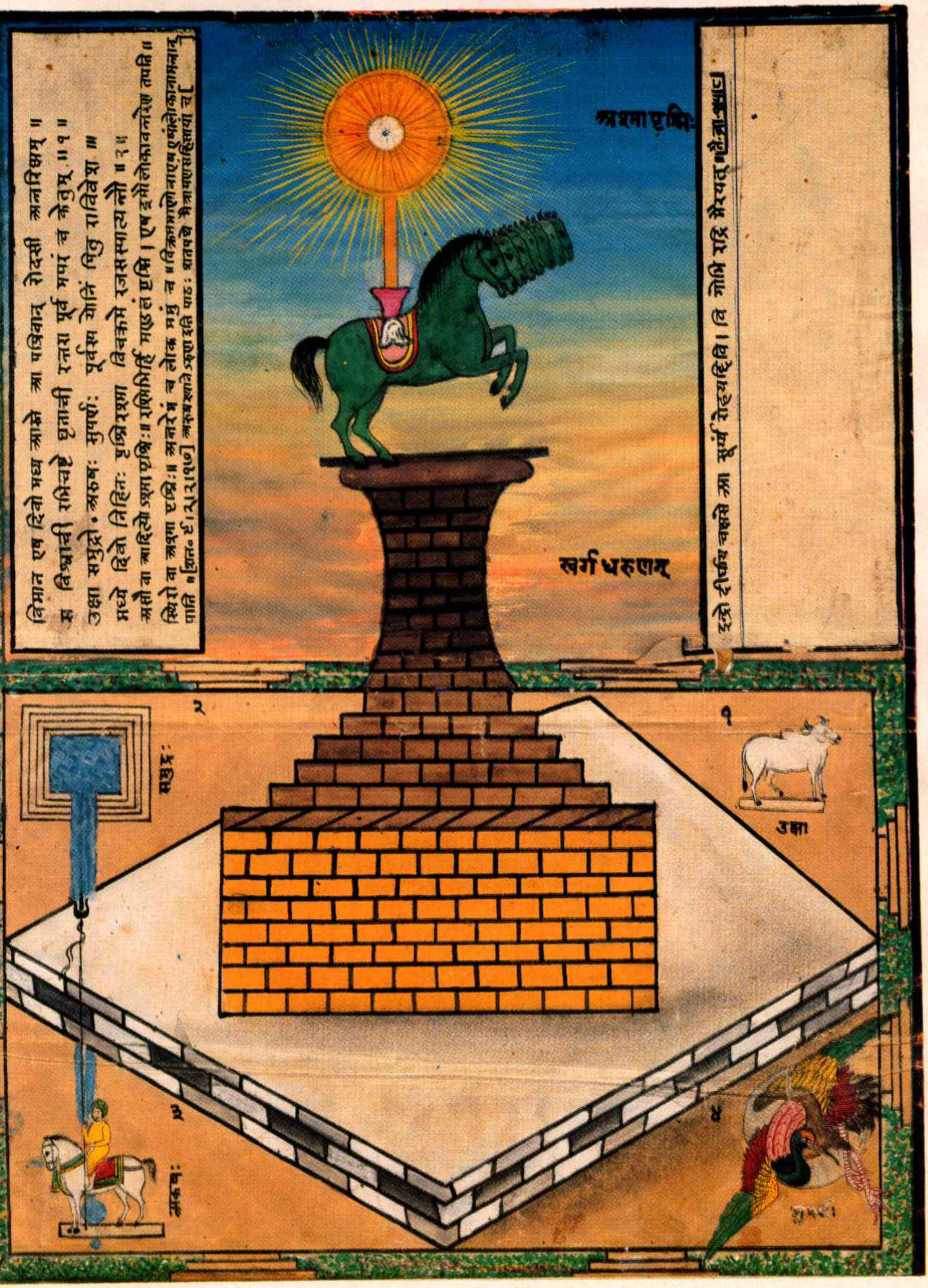


वाक्–प्राण–चक्षुः–श्रोत्र, इन चार इन्द्रियों का एक स्वतन्त्र विभाग है, एवं मन का स्वतन्त्र विभाग है। चार इन्द्रियप्राण अग्नि–वायु–आदित्य–दिक्-सोमात्मक देवता हैं। इन देवताओं से सप्तविध साकञ्जप्राणों का आविर्भाव होता है। प्राण की सामान्य संज्ञा 'ऋषि' है (द्रष्टव्य, के ते ऋषय इति ?, प्राणा वा ऋषयः। शत० ६।१।१।१)। क्योंकि इन्द्रियानुगत साकञ्जप्राणों की मूलप्रतिष्ठा अग्न्यादि देव हैं, अतएव इन सप्त-ऋषि प्राणों को 'देवजाः' कहा गया है। इन सातों में ६ प्राण यमज (जोड़ले) हैं, सातवां एकज है, एकाकी है। २ श्रोत्रप्राण, २ चक्षुःप्राण, २ नासाप्राण, इस प्रकार ६ प्राण यमज हैं। वागनुगत मुखप्राण एकज है। यही साकञ्जप्राणसप्तक का शिरोऽनुगत प्रथम विस्तार है। शिरोगुहावत् उरोगुहा, उदरगुहा, बस्तिगुहा में भी इस सप्तक का वितान होता है। दो हाथ, दो स्तन, दो फुप्फुस, हृदय, यह सप्तक उरोगुहा में प्रतिष्ठित है। २–यकृत्–प्लीहा (जिगर, और तिल्ली), २–क्लोम, २–वृक्क, १–नाभि, यह सप्तक उदरगुहा में प्रतिष्ठित है। २–श्रोणी, २–आण्ड, २–मूत्ररेतसी, १–गुद, यह सप्तक बस्तिगुहा में प्रतिष्ठित है। इसप्रकार इस प्राणसप्तक का अध्यात्मसंस्था में चार स्थानों में वितान हो रहा है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

ईशोपनिषत् हिन्दी-विज्ञानभाष्य

प्रथम खण्ड



स्वर्ग धरुण परिलेख



पञ्चपुण्डीर परिलेख

ईशोपनिषत् हिन्दी-विज्ञानभाष्य

द्वितीय खण्ड

स्वयम्भू से समष्टि पर्य्यन्त सृष्टि–परिलेख

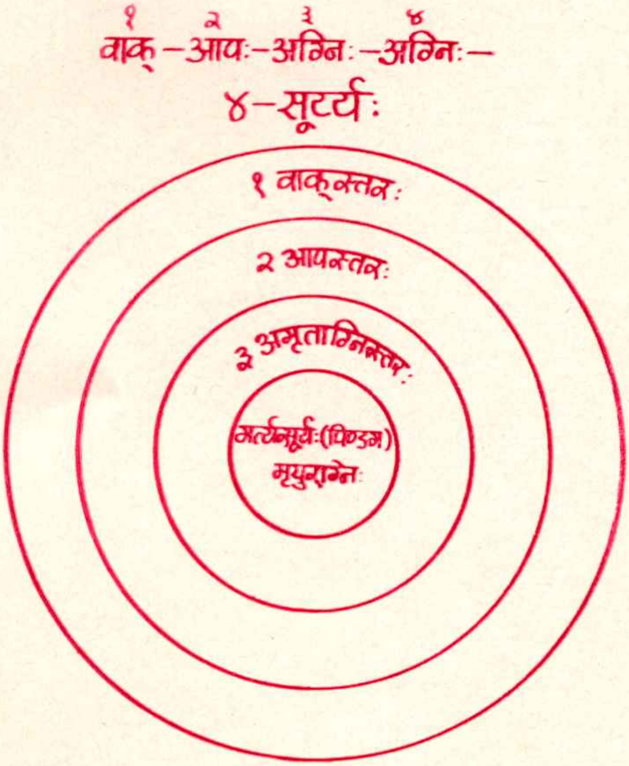


स्वायम्भुवी वाक् पहला शुक्र है, पारमेष्ठ्य ग्राप दूसरा शुक्र है, सौर ग्रग्नि तीसरा शुक्र है। तीनों ही ग्रमृत–मृत्यु भेद से दो-दो भागों में विभक्त होते हुए षट्शुक्र–संपत्ति के सम्पादक बन जाते हैं। उत्तर-उत्तर की सृष्टि में पूर्व-पूर्व के शुक्र ग्रनुस्यूत रहते हैं। ऐसी ग्रवस्था में सर्वत्र सब शुक्रों की सूक्ष्मावस्था मानने पर भी विकास क्रमिक ही माना जाएगा। स्वयम्भू केवल वाङ्मय है। परमेष्ठी स्वयम्भू के उदर में है, इसलिए यह स्व-स्वरूप से ग्रापोमय बनता हुआ वाक् के ग्रागमन से वाङ्मय है। सूर्य्य में ग्रमृताग्नि–मर्त्याग्नि के साथ-साथ वाक् ग्रौर ग्राप का भी सम्बन्ध है, क्योंकि सूर्य्य परमेष्ठी के गर्भ में है। दृष्टि-क्रमानुसार पृथिवी ग्रौर सूर्य्य के गर्भ में प्रतिष्ठित ग्रन्तरिक्षस्थानीय चन्द्रमा में पाँच शुक्र हैं, एवं दृष्टि-क्रमानुसार (साथ ही में हम पार्थिव प्राणियों की ग्रपेक्षा से स्थिति-क्रमानुसार भी) सबसे ग्रन्त में मानी जाने वाली पृथिवी में छहों शुक्रों का योग हो रहा है। इन्हीं स्थितियों को स्वयम्भू से समष्टि पर्य्यन्त परिलेखों में स्पष्ट किया गया है, जो प्रस्तुत चित्र से प्रारम्भ कर ग्रागामी पांच (कुल छह) चित्रों में ग्रभिव्यक्त है।

स्वयम्भू से समष्टि पर्य्यन्त सृष्टि–परिलेख



स्वयम्भू से समष्टि पर्य्यन्त सृष्टि–परिलेख

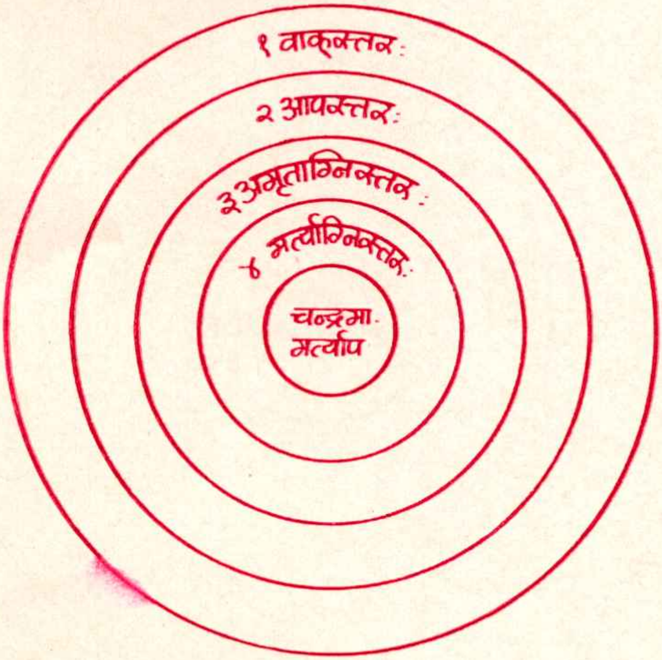


श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

स्वयम्भू से समष्टि पर्य्यन्त सृष्टि—परिलेख

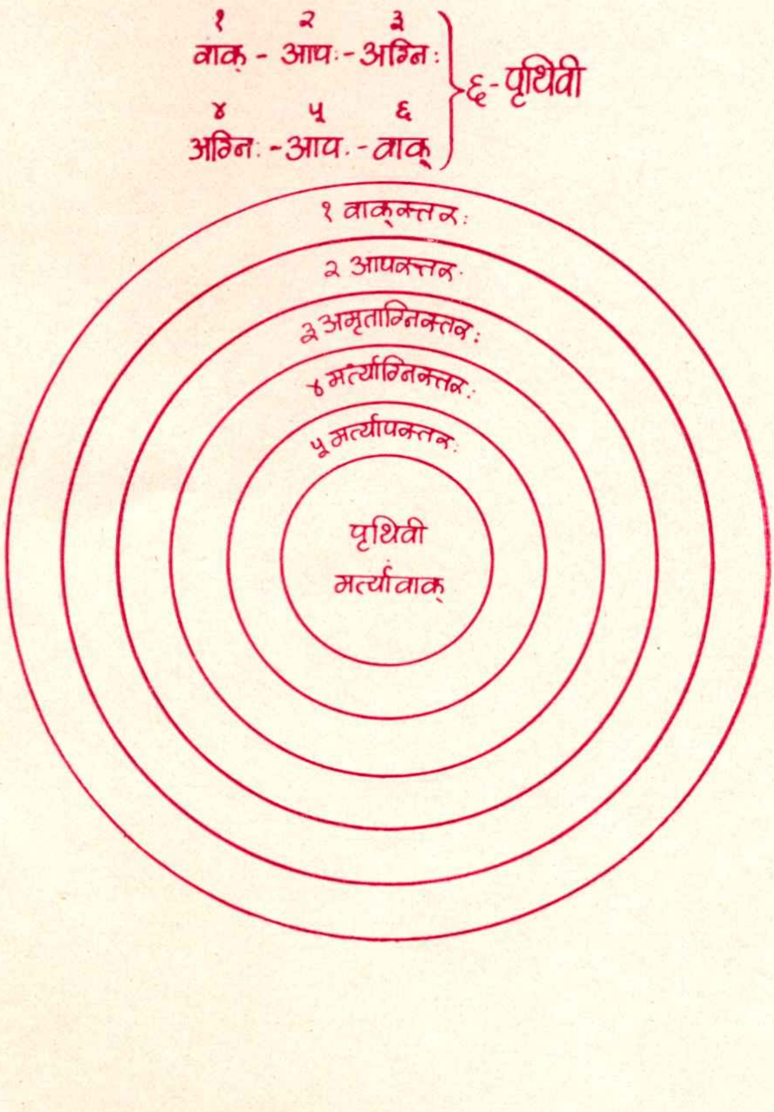
१ वाक्–२ आपः–३ अग्निः–४ अग्निः–५ आपः–

५—चन्द्रः



श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

स्वयम्भू से समष्टि पर्य्यन्त सृष्टि—परिलेख



श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

स्वयम्भू से समष्टि पर्य्यन्त सृष्टि–परिलेख



श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

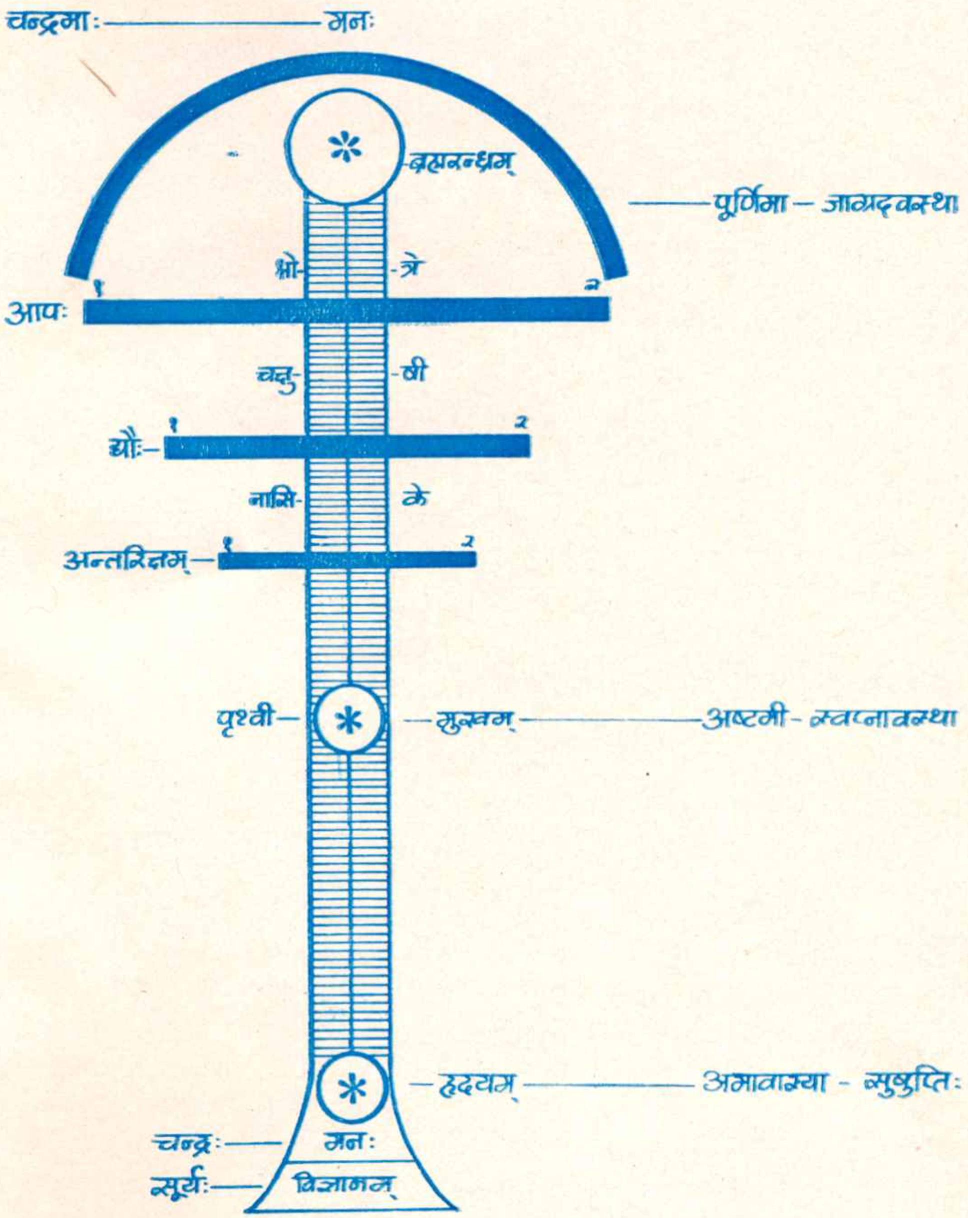
एष सर्वभूतान्तरात्मा



पार्थिव त्रिवृदग्नि को आधार बना कर आन्तरिक्ष्य वायु, दिव्य इन्द्र की आहुति होने से, तीनों के समन्वय से 'वैश्वानर अग्नि' उत्पन्न होता है। आन्तरिक्ष्य वायु में पार्थिव-अग्नि, दिव्य-इन्द्र की आहुति होने से 'हिरण्यगर्भ' का जन्म होता है। दिव्याग्नि में पार्थिव अग्नि, आन्तरिक्ष्य वायु की आहुति होने से 'सर्वज्ञ' का जन्म होता है। वैश्वानर अग्नि का प्रभव वायु-इन्द्रगर्भित पार्थिव अग्नि है, प्रतिष्ठा—त्रिवृत-स्तोम है, व्याप्तिस्थान सारा त्रैलोक्य है। हिरण्यगर्भ वायु का प्रभव पार्थिवाग्नि-इन्द्रगर्भित आन्तरिक्ष्य वायु है, प्रतिष्ठा—पञ्चदशस्तोम है, व्याप्तिस्थान सारा त्रैलोक्य है। सर्वज्ञ इन्द्र का प्रभव अग्निवायु-र्गभित दिव्य इन्द्र है, प्रतिष्ठा—एकविंशस्तोम है, व्याप्तिस्थान त्रैलोक्य है। यही त्रिदेव—समष्टि स्वज्ञान-क्रिया-अर्थ शक्ति से सारे भौतिक विश्व का आत्मा बन रही है। भूतों का अधिष्ठाता होने से ही इस देवसत्य को "सर्वभूतान्तरात्मा" कहा जाता है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

आध्यात्मिक-अवस्थात्रयी–परिलेख



श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

प्रभव-योनि-प्रतिष्ठा-आशाय-परिलेख

१	१—प्रभवः—(उत्पत्तिस्थानम्)—ईश्वरात्मा, शुक्र-योगमायाच २—योनिः—(प्रवेशद्वारम्)—महानात्मा (महत्सोमः) ३—प्रतिष्ठा—(स्थितिस्थानम्)—सर्वान्तरतमो दहराकाशः ४—आशयः—(व्याप्तिस्थानम्)—शरीरम्	"पुरुषान्न परं किञ्चित्, सा-काष्ठा सा परा गतिः" षोडशीपुरुषः → अमृतात्मा (अव्यक्तात् पुरुषः परः)
२	१—प्रभवः—स्वयम्भूः २—योनिः—शिरोगुहा ३—प्रतिष्ठा—हृदयम् ४—आशयः—शरीरम्	अव्यक्तात्मा-(प्राकृतात्मा) १-अव्यक्तम्) ब्रह्मसत्यात्मा (महतः परं → → → →
३	१—प्रभवः—परमेष्ठी २—योनिः—शुक्रम् ३—प्रतिष्ठा—हृदयम् ४—आशयः—शरीरम्	महानात्मा (प्राकृतात्मा) २-महान्) ब्रह्मसत्यात्मा (बुद्धेरात्मा (परः) → →
४	१—प्रभवः—सूर्यः २—योनिः—नान्दनम् ३—प्रतिष्ठा—हृदयम् ४—आशयः—शरीरम्	विज्ञानात्मा (प्राकृतात्मा) ३-बुद्धिः) ब्रह्मसत्यात्मा (मनसस्तु परा → → → →
५	१—प्रभवः—चन्द्रमाः (अन्नम्) २—योनिः—शुक्रम् ३—प्रतिष्ठा—हृदयम् ४—आशयः—शरीरम्	प्रज्ञानात्मा (प्राकृतात्मा) ४-मनः) ब्रह्मसत्यात्मा (इन्द्रियेभ्यः पर → → → →

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानबाश्रम', जयपुर ।

६

१—प्रभवः—भास्वरसोमः
२—योनिः—प्रज्ञानम्
३—प्रतिष्ठा—ब्रह्मरन्ध्रम्
४—आशयः—पञ्चेन्द्रियाणि

} (इन्द्रियाणि (कर्म्मावच्छिन्न-शरीरतः) पराण्याहुः) संकल्पविकल्पात्मकमिन्द्रियं — मनः १

—o—

७

१—प्रभवः—दिक्सोमः
२—योनिः—प्रज्ञानम्
३—प्रतिष्ठा—श्रोत्रविवरे
४—आशयः—मनः (प्रज्ञानम्)

} श्रोत्रे २

—o—

८

१—प्रभवः—आदित्यः
२—योनिः—प्रज्ञानम्
३—प्रतिष्ठा—चक्षुर्विवरे
४—आशयः—मनः (प्रज्ञानम्)

} चक्षुषी ३

—o—

९

१—प्रभवः—वायु
२—योनिः—प्रज्ञानम्
३—प्रतिष्ठा—नासाविवरे
४—आशयः—मनः (प्रज्ञानम्)

} नासिके (प्राणः) ४

—o—

१०

१—प्रभवः—अग्निः
२—योनिः—प्रज्ञानम्
३—प्रतिष्ठा—जिह्वा
४—आशयः—मनः (प्रज्ञानम्)

} वाक् ५

} प्रज्ञानात्मकानि इन्द्रियाणि

इन्द्रियाणि — पराण्याहुः

१—प्रभवः—पञ्चीकृता मृत्
२—योनिः—शुक्रशोणिते-अन्नञ्च
३—प्रतिष्ठा—अग्निश्चित्यः
४—आशयः—शरीरम्

} अस्थिमांसादयो घनपदार्थाः १

—•—

१—प्रभवः—पार्थिवापः पञ्चीकृताः
२—योनिः—शुक्रशोणिते-आपश्च
३—प्रतिष्ठा—आपः
४—आशयः—शरीरम्

} असृगन्नसादयस्तरलपदार्थाः २

—•—

१—प्रभवः—पञ्चीकृतोऽग्निः पार्थिवः
२—योनिः—शुक्रशोणिते-तेजश्च
३—प्रतिष्ठा—तेज
४—आशयः—शरीरम्

} ऊष्मा ३

—•—

१—प्रभवः—पञ्चीकृतो वायुः पार्थिवः
२—योनिः—शुक्रशोणिते-वायुश्च
३—प्रतिष्ठा—वायुः
४—आशयः—शरीरम्

} धमन्यो वायुवाहिन्यः ४

—•—

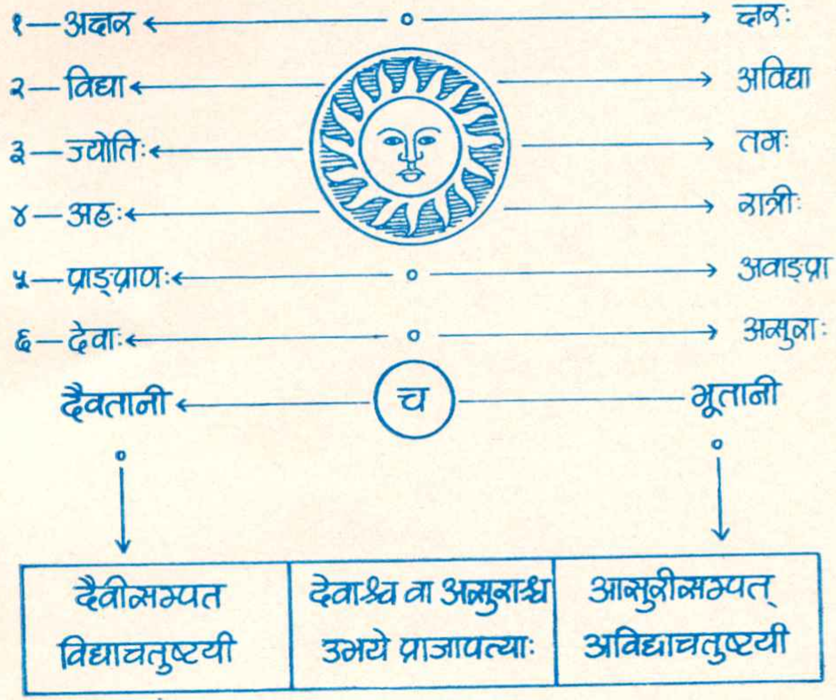
१—प्रभवः—पञ्चकृत आकाशः पार्थिवः
२—योनिः—शुक्रशोणिते-शब्दश्च
३—प्रतिष्ठा—आकाशः
४—आशयः—शरीरम्

} सुषिराणि ५

—•—

"पञ्चभूतात्मक—शरीरम्..."
"ब्र—ह्म—क्ष—य—म्"
शरीरं—मूलप्रतिष्ठा।

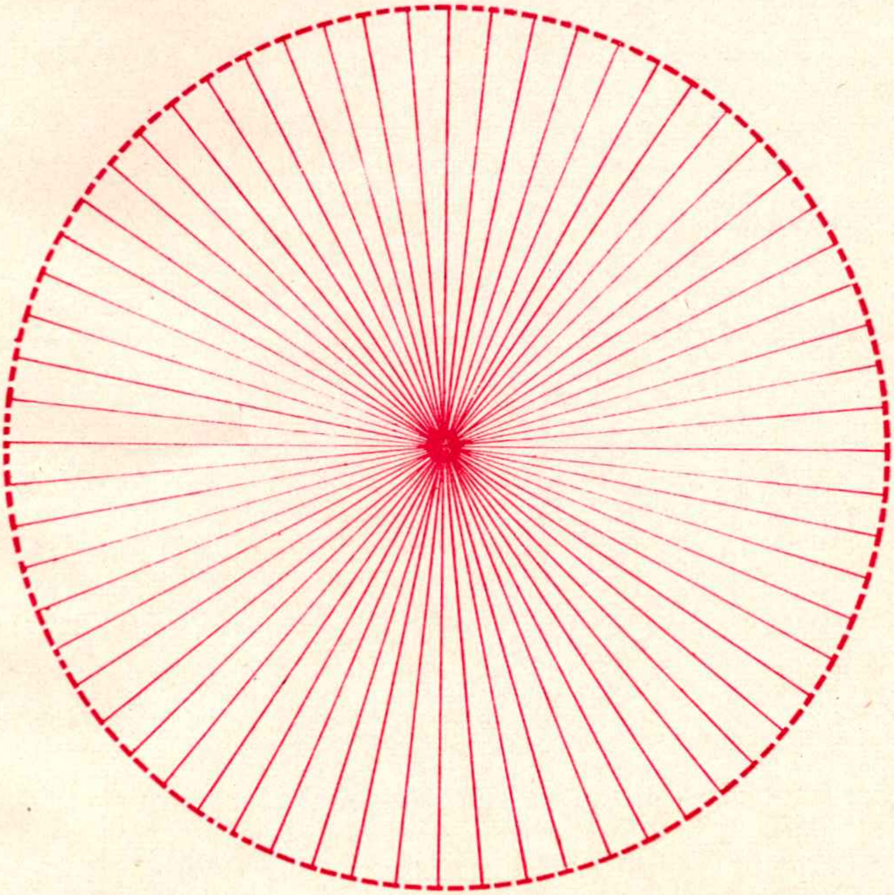
सम्पत्परिलेखः



हमारी बुद्धि जैसे अध्यात्मसंस्था को प्रकाशित करने वाला सूर्य्य है, एवमेव वह सूर्य्य आधिदैविक-संस्था को प्रकाशित करने वाली (ईश्वर की) बुद्धि है। इसमें विद्या-अविद्या दोनों भावों का साम्राज्य है, अतएव इसमें ज्योति और तम का उदय हो जाता है। सूर्य्य अपने प्राङ्प्राण से विद्याचतुष्टयीरूप **दैवीसम्पत्** का प्रवर्त्तक बनता है, एवं अवाङ्प्राण से अविद्याचतुष्टयीरूप **आसुरीसम्पत्** का जनक बनता है (द्रष्टव्य शत० ब्रा० ११।१।६।७-८)। उक्त श्रुति के अनुसार इन्द्रात्मक सूर्य्य प्रजापति से ही देव-असुर सृष्टि की प्रवृत्ति को बतलाया गया है। देवता और असुर दोनों सूर्य्य (इन्द्र) की सन्तान हैं।

छान्दोग्योपनिषत् हिन्दी-विज्ञानभाष्य

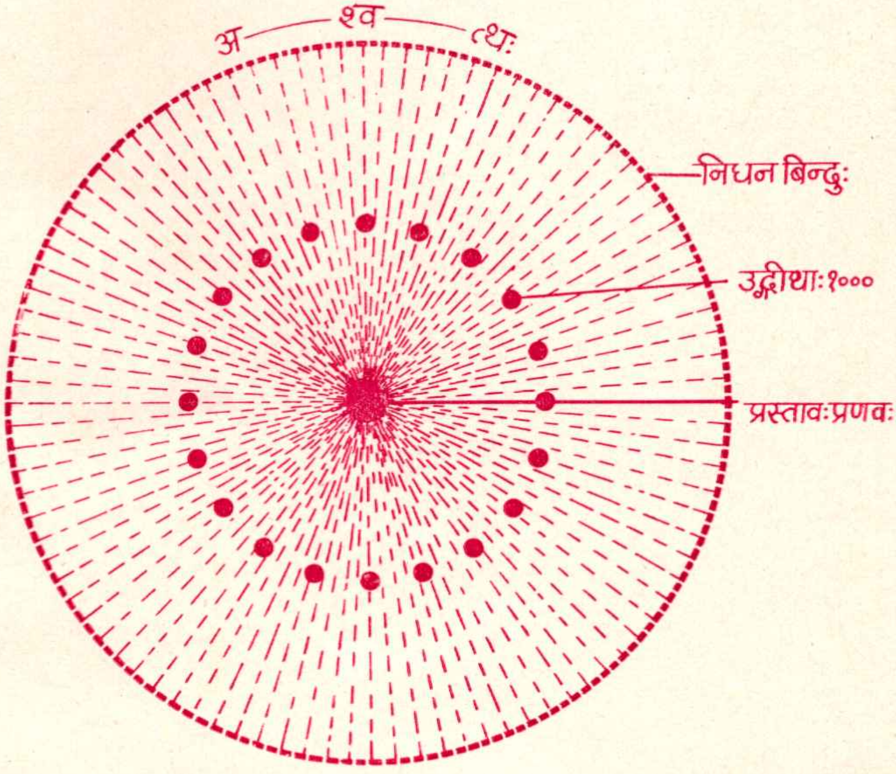
सामवेदे—यजुर्वेदः



पिण्ड के व्यास को ऋक् कहा जाता है। व्यास की तीन-तीन बिन्दु आगे बढ़ती हैं इसमें मध्य की बिन्दु तो स्वस्थान पर ही रह जाती है एवं पार्श्व की दोनों बिन्दुएँ आगे आकर सम्भूय केन्द्र बिन्दु बन जाती हैं। इस प्रकार पिण्ड-केन्द्र से आरम्भ कर महिमा-मण्डल की परिधि तक प्रत्येक रश्मि में एक अकुटिल केन्द्रबिन्दु-समुच्चय रूपा रेखा बन जाती है। इसी का नाम वितानाख्य वितानमय यजुर्वेद है। केन्द्रबिन्दु का समुच्चय ही मूर्ति बनता है। यही मण्डल बनता है। इसी की मूर्ति है—इसी का मण्डल है। जिसकी मूर्ति है—जिसका मण्डल है—वही मुख्य रस यजुः है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानबाश्रम', जयपुर।

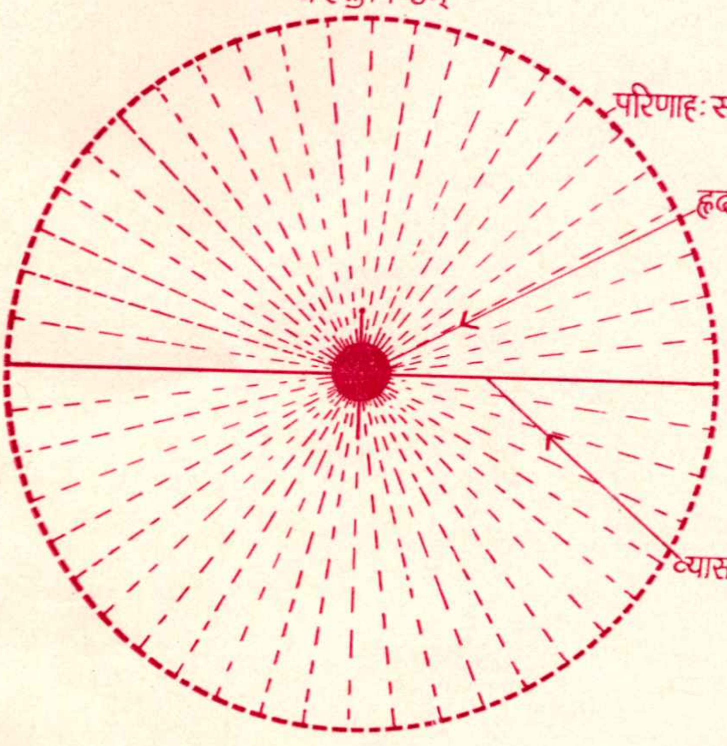
प्रणव परिलेख–



प्रत्येक वस्तुपिण्ड का उपक्रम-बिन्दु हृदयभाव है। अक्षर, प्रजापति है। यहीं से वस्तुपिण्ड का प्रस्ताव आरम्भ होता है। अतएव इस हृदयभाव को 'प्रणव' कहा जाता है। यही प्रणव वितान भाव से पिण्डरूप में परिणत होता है। केन्द्रबिन्दु सत्यभाव है। मूल में केन्द्र तथा तूल में केन्द्रबिन्दुओं के प्रसार से पूर्णता है। उपर्युक्त बिन्दुप्रसाररूपा रेखाएँ परिलेख–नियमानुसार एक ही ओर बतलाई गई हैं। वस्तुतः इनका प्रसार चारों ओर समझना चाहिए। चित्र में रेखाएँ दूर-दूर दिखलाई गई हैं। वस्तुतः इनमें परस्पर इतना साहचर्य्य है कि अन्य वस्तु के प्रवेश के लिए यत्किञ्चित् स्थान खाली नहीं रहता। सकेन्द्र महामायावच्छिन्न परात्पर का भाग ही 'अश्वत्थ' नाम से प्रसिद्ध है। केन्द्र-बिन्दु को प्रस्ताव-बिन्दु एवं परिधि-बिन्दु को निधन-बिन्दु कहते हैं। इन दोनों (प्रस्ताव-निधन) के मध्य बिन्दु का नाम उद्गीथ प्रजापति है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

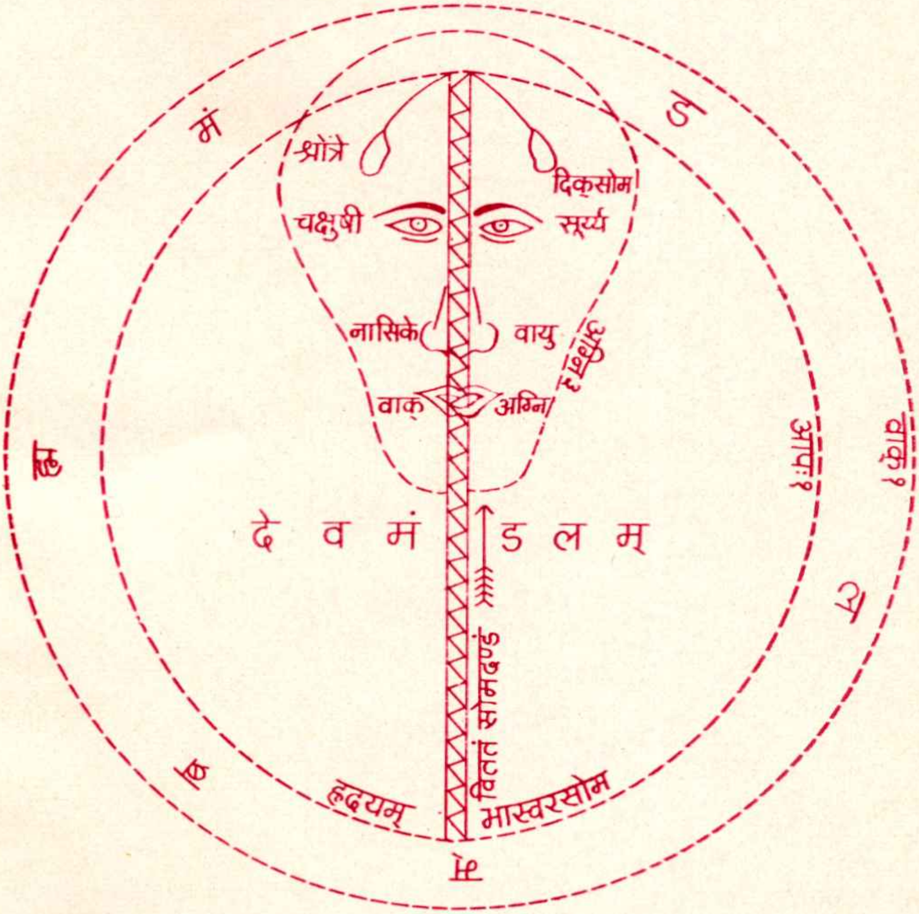
ऋग्वेदः—छन्दोवेदः—मूर्त्तिः—पिण्डम्



पिण्ड छन्दोवेद है। यह आयतन रूप है। इसका आयतन—(चारों ओर का घेरा) पिण्ड का विष्कम्भ व्यास (डायमीटर), तथा केन्द्र-बिन्दु इन तीन भागों में विभक्त है। व्यास ऋक् है। परिणाह (घेरा) साम है। घेरा व्यास से त्रिगुणित होता है, अतएव 'त्रिचं साम' इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसे साम कहा जाता है। यही वस्तु का अवसान है—इसलिए भी इस परिणाह को अवसानात्मक साम कहा जाता है। केन्द्र-बिन्दु हृदय-प्रजापति है। 'अजायमानो बहुधाविजायते' के अनुसार यही हृदय-बिन्दु अग्नि-सोम द्वारा पिण्ड का निर्माण करता है। मौलिक रसरूप-पिण्ड का निर्म्माता यह हृदयभाव ही यजुः है। प्रस्तुत चित्र में छन्दभावात्मक त्रयीवेद क वतान दिखाया गया है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

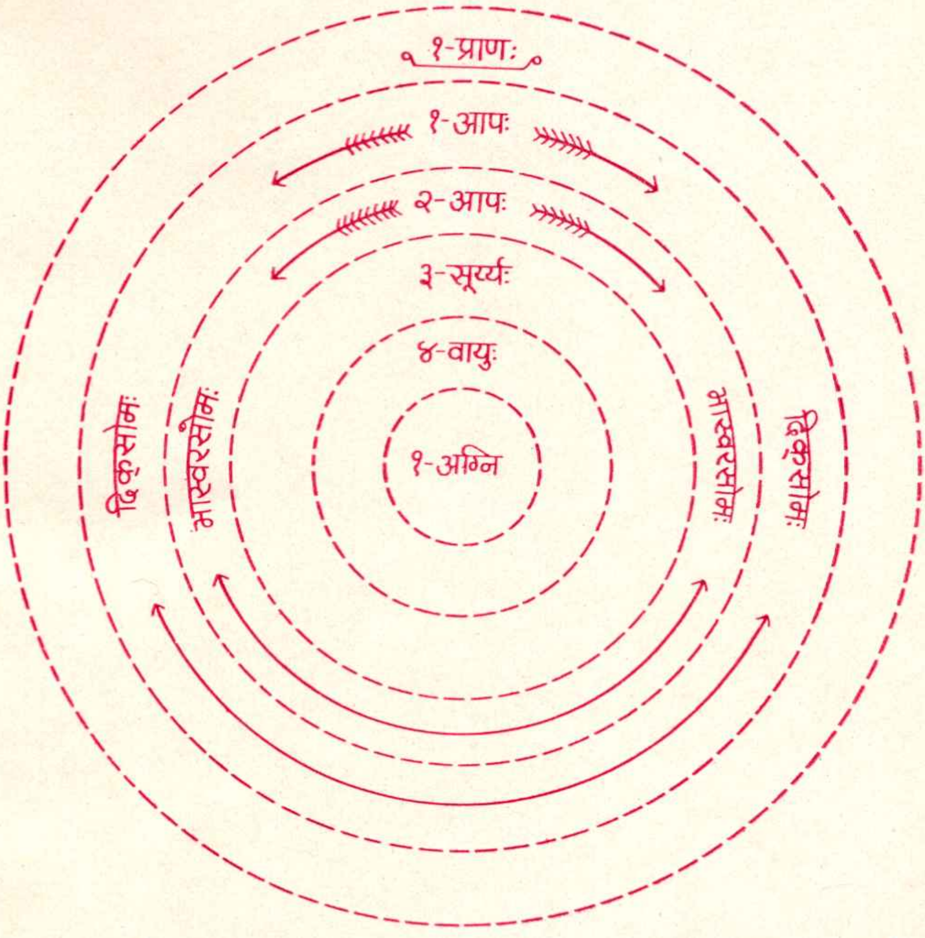
सोमदण्ड-प्रतिष्ठा परिलेख



'अग्नि–वायु–सूर्य्य–आप–प्राण' इन पाँच देवताओं से क्रमशः 'वाक्–प्राण–चक्षु–मन–श्रोत्र' इन पाँचों आधिदैविक इन्द्रियों का स्वरूप निष्पन्न हुआ है। वाक् अग्निमय है। प्राण वाङ्मय है। चक्षु सूर्य्यमय हैं। मन भास्वरसोम (चन्द्रमा) मय है। श्रोत्र दिक्सोममय है। हृदय में मन है। हृदय से ब्रह्मरन्ध्र (शिरस्थ स्थान) तक प्रश्नोपनिषत् सिद्धान्त के अनुसार सोमदण्ड प्रतिष्ठित है। इसके उपक्रम-स्थान का नाम मन है। इस वितत सोम-पटल पर क्रमशः 'वाक्–प्राण–चक्षुरूप अग्नि–वायु–सूर्य्य देवता प्रतिष्ठित हैं। इन पाँचों आग्नेय–सौम्य देवताओं के चारों ओर यजुःमूर्ति स्वायम्भुव उद्गीथ प्राण का वेष्टन है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

वाक्-आप-अग्नि परिलेख



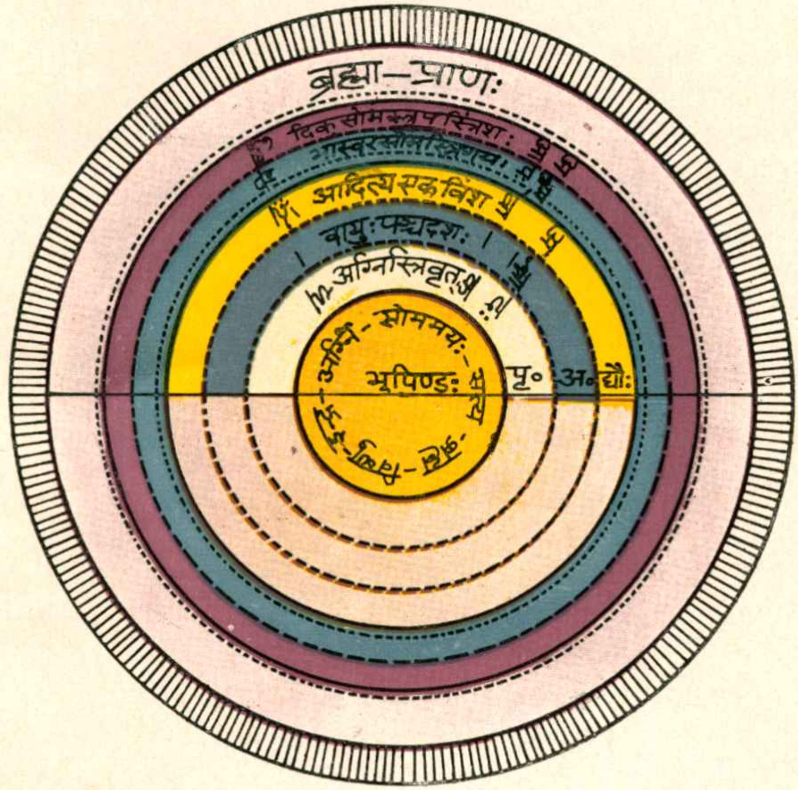
विश्व में 'वाक्–आप–अग्नि' नामक तीन शुक्रों का साम्राज्य है। इनमें 'वाक्' अनुष्ण-शीत तत्त्व है, 'आप' शीत तत्त्व है एवं 'अग्नि' उष्ण तत्त्व है। ये तीनों क्रमशः 'आवपन–अन्न–अन्नाद' नाम से प्रसिद्ध हैं। आधार-भूमि आवपन है। यही 'ख' ब्रह्म है। यही पहला वाक्-स्तर है। इसी को प्राणात्मक आकाश कहते हैं। प्राणा वै अवकाशः के अनुसार अवकाश ही प्राण है। इसी प्राणायतन-रूप 'ख' ब्रह्म के आधार पर आप-रूप अन्न और अग्नि-रूप अन्नाद परस्पर मिथुन-भाव से सम्पूर्ण विश्व का सञ्चालन कर रहे हैं। 'आप' तत्त्व सोम है और 'अग्नि' तत्त्व अग्नि है। इस प्रकार पहला स्तर 'वाक्' का, दूसरा स्तर 'आप' का एवं तीसरा स्तर 'अग्नि' का है। वाक् भाग मूलतः आकाशात्मक प्राणमय अव्यक्तात्मा (शान्तात्मा) है। बाकी बचते हैं आप और अग्नि। इनमें आप भाग की 'दिक्' और 'भास्वर' भेद से दो अवस्थाएँ हो जाती है। अग्नि की 'अग्नि'–'वायु'–'सूर्य्य' ये तीन अवस्थाएँ हो जाती हैं।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

श्राद्धविज्ञान

प्रथम खण्ड

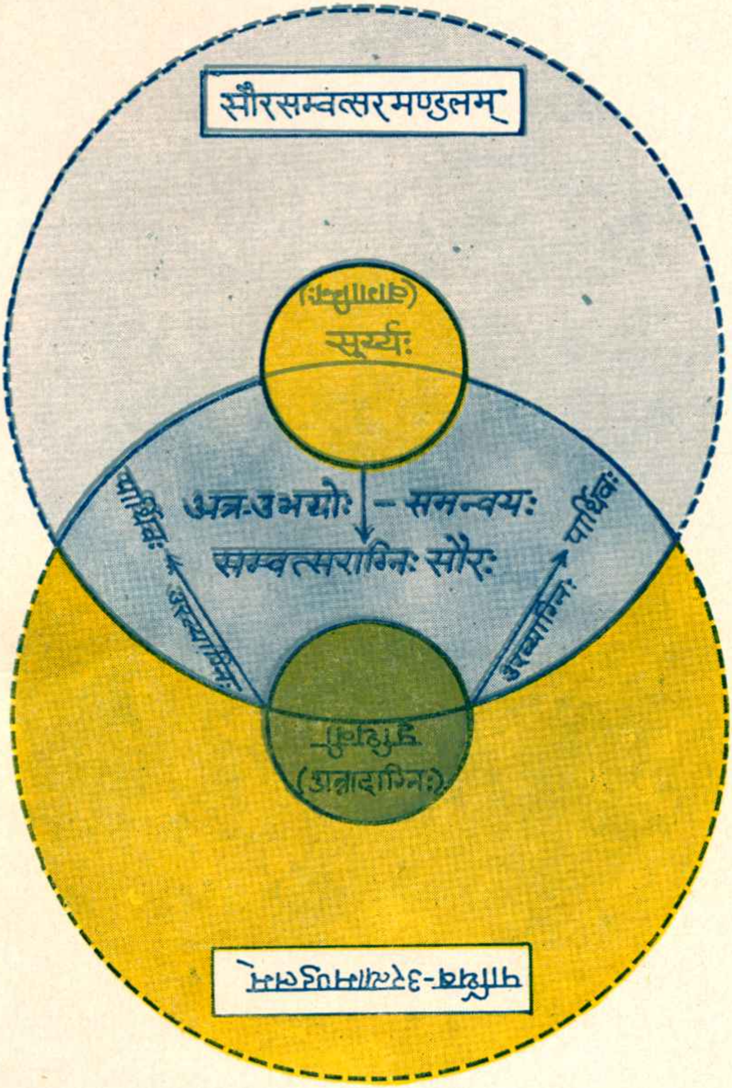
भूविवर्त्तम् परिलेखः—



भूपिण्ड पञ्चीकृत प्राणादि से निष्पन्न हुआ है। भूपिण्ड में प्राणमय **ब्रह्मा**, आपोमय विष्णु, वाङ्मय इन्द्र, अन्नादमय अग्नि, अन्नमय सोम इन पाँचों का भोग हो रहा है। भूपिण्ड में केन्द्र और पिण्ड ये दो भाग हैं। इनमें केन्द्र में ब्रह्मा-विष्णु–इन्द्र प्रतिष्ठित है। पृथिवी के २१ पर्य्यन्त अग्निगर्भित **इन्द्र** है, ३३ पर्य्यन्त सोमगर्भित **विष्णु** है तथा ४८ पर्य्यन्त **ब्रह्मा** है। २१ पर्य्यन्त व्याप्त रहने वाला इन्द्रमूर्ति क्रमशः अग्नि–वायु–आदित्य, इन तीन अवस्थाओं में परिणत रहता है। ३३ पर्य्यन्त व्याप्त रहने वाला विष्णु क्रमशः पृथिवी–अन्तरिक्ष–द्यौः–आपः इन चार लोकों का आरम्भक बनता है। ४८ पर्य्यन्त प्राणमय ब्रह्मसत्यात्मा व्याप्त रहता है।

श्रीबालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

सौरसम्वत्सर परिलेखः—

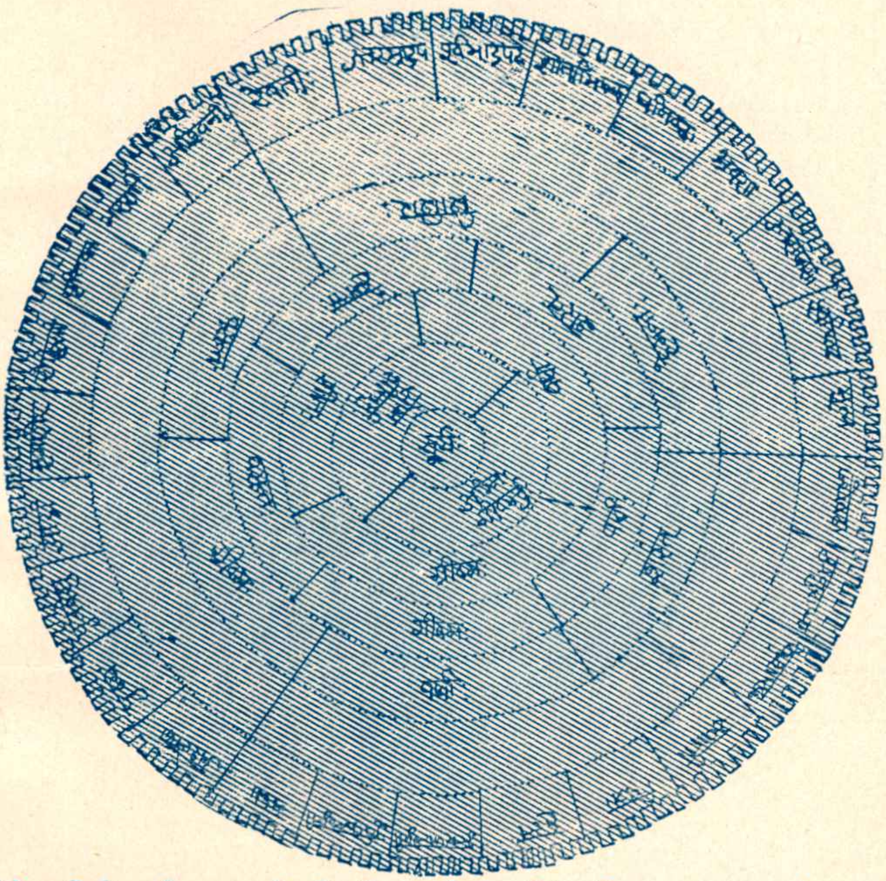


सौर सम्वत्सराग्नि पृथिवी की ओर निरन्तर आया करता है, ठीक इसके विपरीत पार्थिव विस्रस्त अन्नादाग्नि सम्वत्सर की ओर जाया करता है। प्रतिफलित सत्यधर्म्मा सम्वत्सराग्नि पार्थिव अग्नि का अन्न है तथा पार्थिव अग्नि अस्मदादि प्रजा निर्म्माण में खर्च होता रहता है। इस कमी की पूर्ति सम्वत्सराग्नि द्वारा होती रहती है। सौर सम्वत्सर एवं पार्थिव उख्याग्नि का एक स्थान पर समन्वय होता है। इसी समन्वय को अग्नियज्ञ कहते हैं। यह अग्नि यज्ञ चित्या—चिति—चयन आदि नामों से व्यवहृत किया जाता है।

श्राद्धविज्ञान

द्वितीय खण्ड

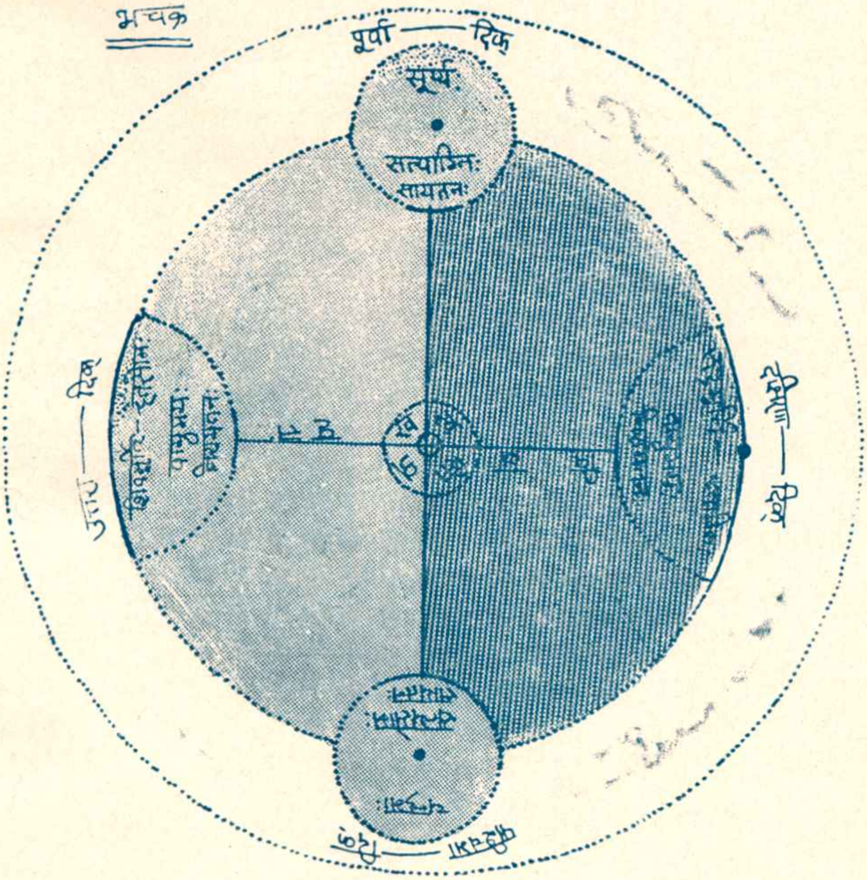
ऋतु सम्बन्धी राशि–नक्षत्र–चक्र परिलेख



सूर्य्यं के चारों ओर क्रान्तिवृत्त नाम से प्रसिद्ध नियत मार्ग पर भूपिण्ड परिक्रमा लगाया करता है। इस परिक्रमा से सूर्य्यं में दक्षिणायन–उत्तरायण भेद से दो भाव उत्पन्न होते हैं। इन्हें ही क्रमशः शीत ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु कहते हैं। उत्तरायण–दक्षिणायन भाव सर्वर्त्तुमूर्ति हैं। मास–पक्ष–अहोरात्र–मुहूर्त्त–घटिका–होरा–क्षण प्रत्येक सर्वर्त्तुमूर्ति है। एक सम्वत्सर-मण्डल में १२ राशियों की सत्ता मानी जाती है। इन १२ राशियों के साथ २७ नक्षत्रों का भोग होता है। १२ राशियों के तीन चतुष्टयों (४+४+४=१२) में से प्रत्येक राशि–चतुष्टय में नौ नक्षत्रों (९+९+९=२७) का भोग होता है। सम्वत्सर में ६ ऋतुएँ मानी जाती हैं। अतः २७ नक्षत्रावच्छिन्न १२ राशियों में से दो-दो राशियों के साथ एक-एक ऋतु का भोग माना गया है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

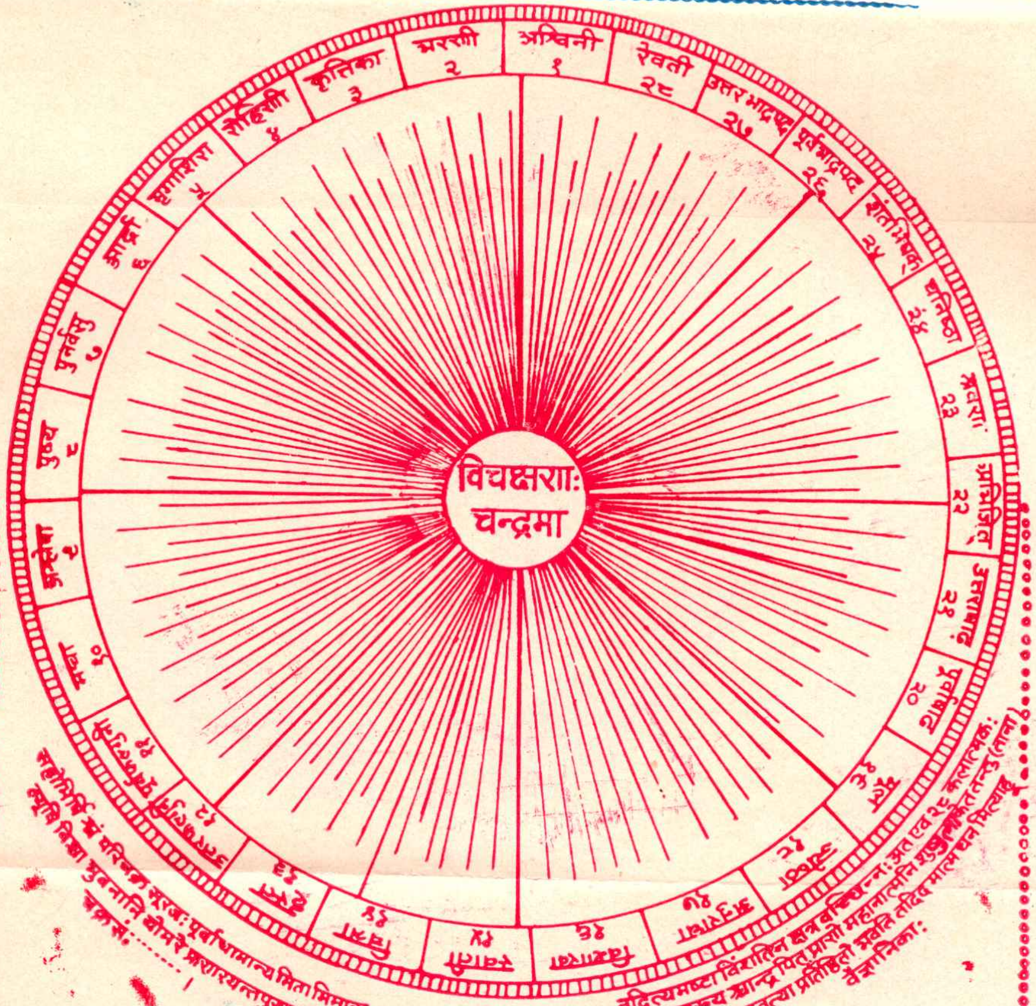
भचक्र

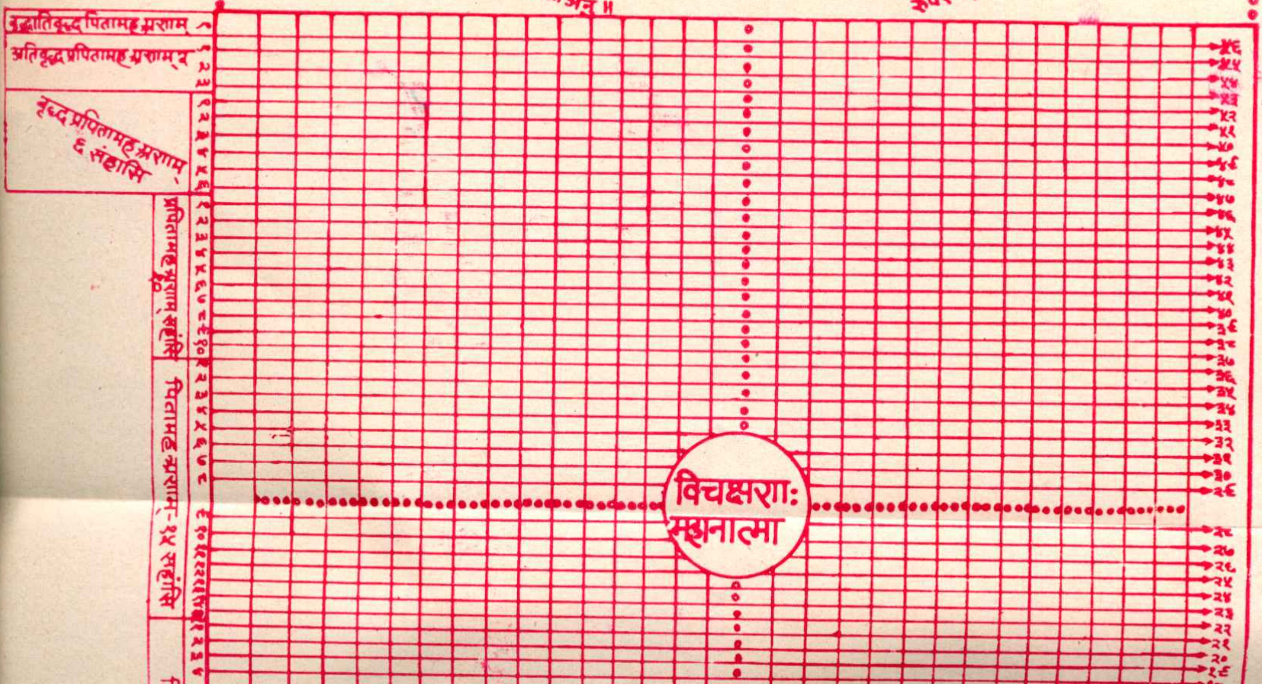


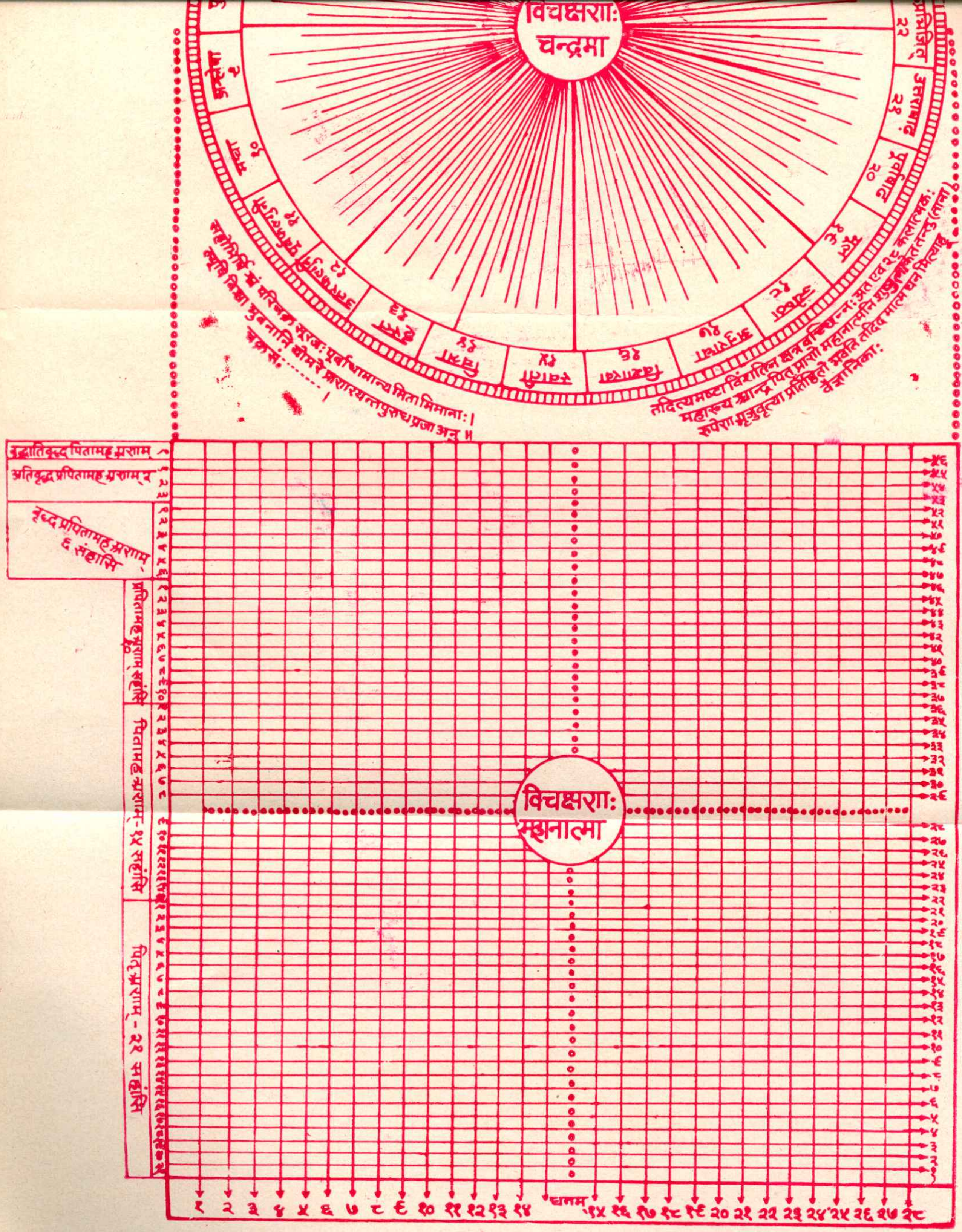
भचक्र:—अग्नि और सोम की, ऋतु—सत्य भेद से, दो—दो अवस्थाएँ होती हैं। **ऋतसोम** वायुरूप है, इसकी सत्ता उत्तर में है अतएव उत्तर को **सौम्यादिक्** कहा जाता है। **ऋताग्नि** वायुरूप है, जिसकी सत्ता दक्षिण में है। अतएव दक्षिण को **याम्यादिक्** कहा जाता है। सत्यसोम प्रत्यक्ष दृष्ट चन्द्रपिण्डात्मक है, इसकी अपनी मूल प्रतिष्ठा पश्चिम में है। सत्याग्नि प्रत्यक्ष दृष्ट सूर्य्य पिण्डात्मक है, जो पूर्वादिक् में प्रतिष्ठित है।

श्राद्धविज्ञान

तृतीय खण्ड

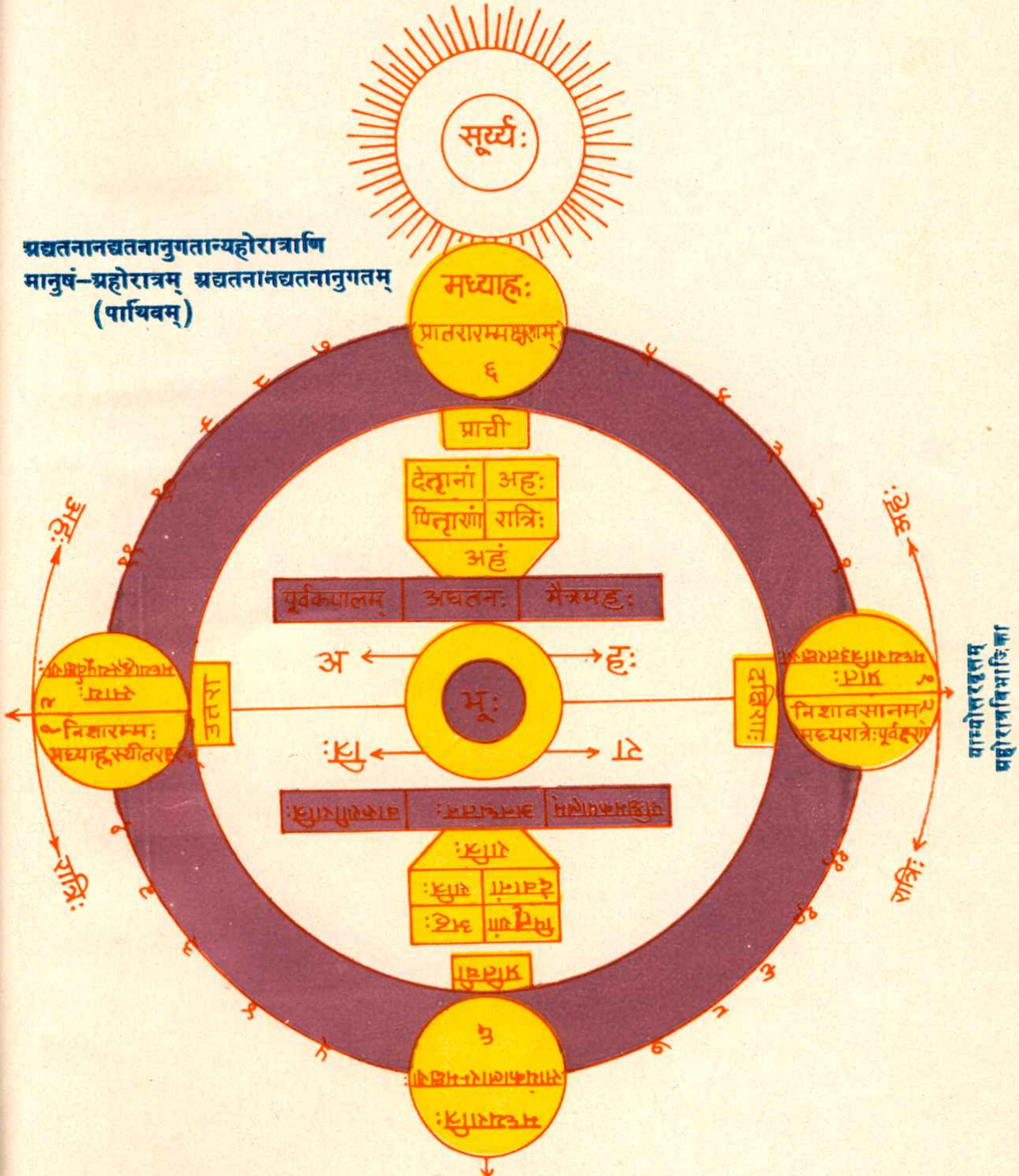

विचक्षराः चन्द्रमा
अश्विनी १
भरणी २
कृत्तिका ३
रोहिणी ४
मृगशिरा ५
आर्द्रा ६
पुनर्वसु ७
पुष्य ८
आश्लेषा ९
मघा १०
पूर्वफल्गुनी ११
उत्तरफल्गुनी १२
हस्त १३
चित्रा १४
स्वाती १५
विशाखा १६
अनुराधा १७
ज्येष्ठा १८
मूल १९
पूर्वाषाढ २०
उत्तराषाढ २१
अभिजित् २२
श्रवण २३
धनिष्ठा २४
शतभिषक् २५
पूर्वभाद्रपद २६
उत्तरभाद्रपद २७
रेवती २८


विचक्षराः महानात्मा
वृद्धातिवृद्ध पितामह प्रराम १
अतिवृद्ध प्रपितामह प्रराम २
वृद्ध प्रपितामह प्रराम ६ संहांसि
प्रपितामह प्रराम संहांसि
पितामह प्रराम - १५ संहांसि



श्री व लचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

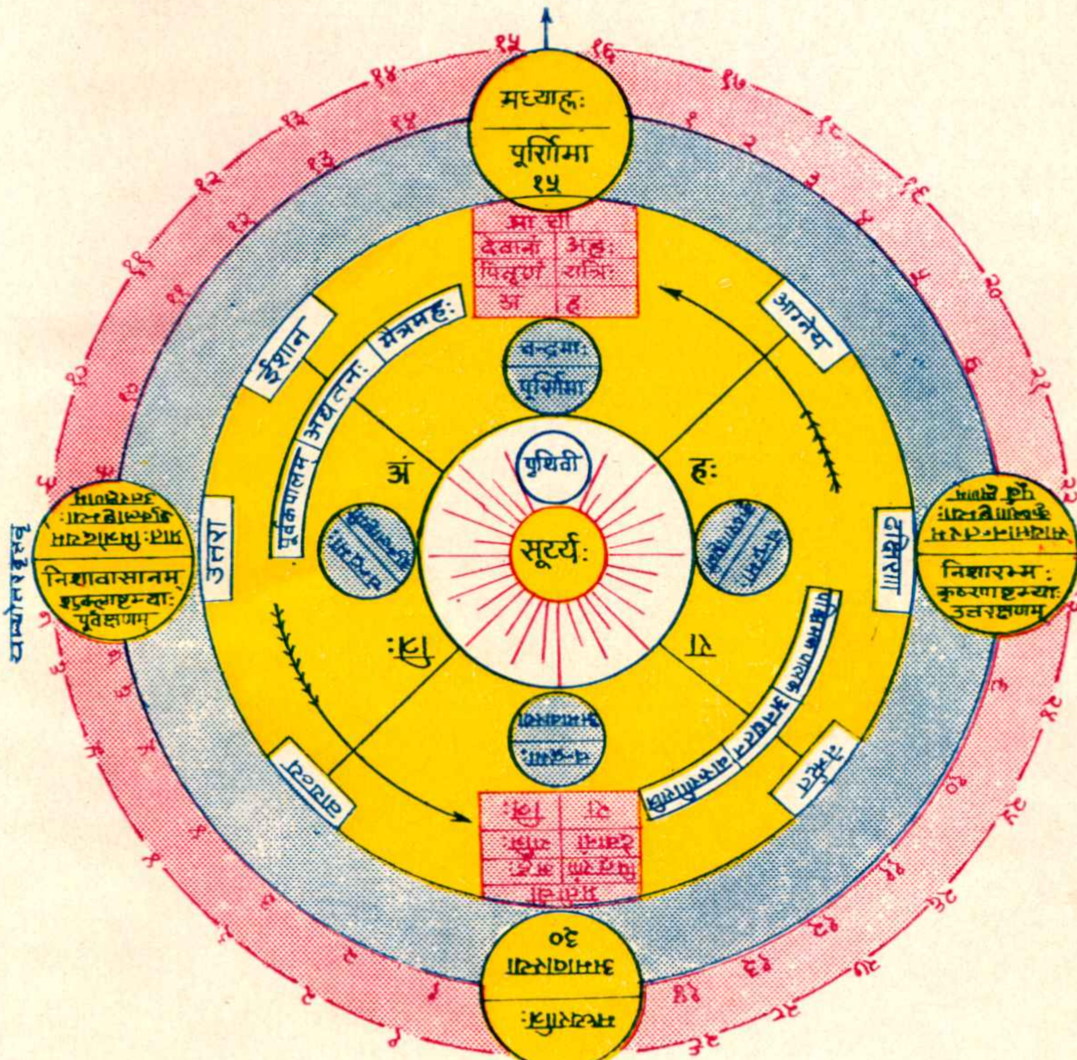
अद्यतनानद्यतनानुगतान्यहोरात्राणि
मानुषं–अहोरात्रम् अद्यतनानद्यतनानुगतम्
(पार्थिवम्)



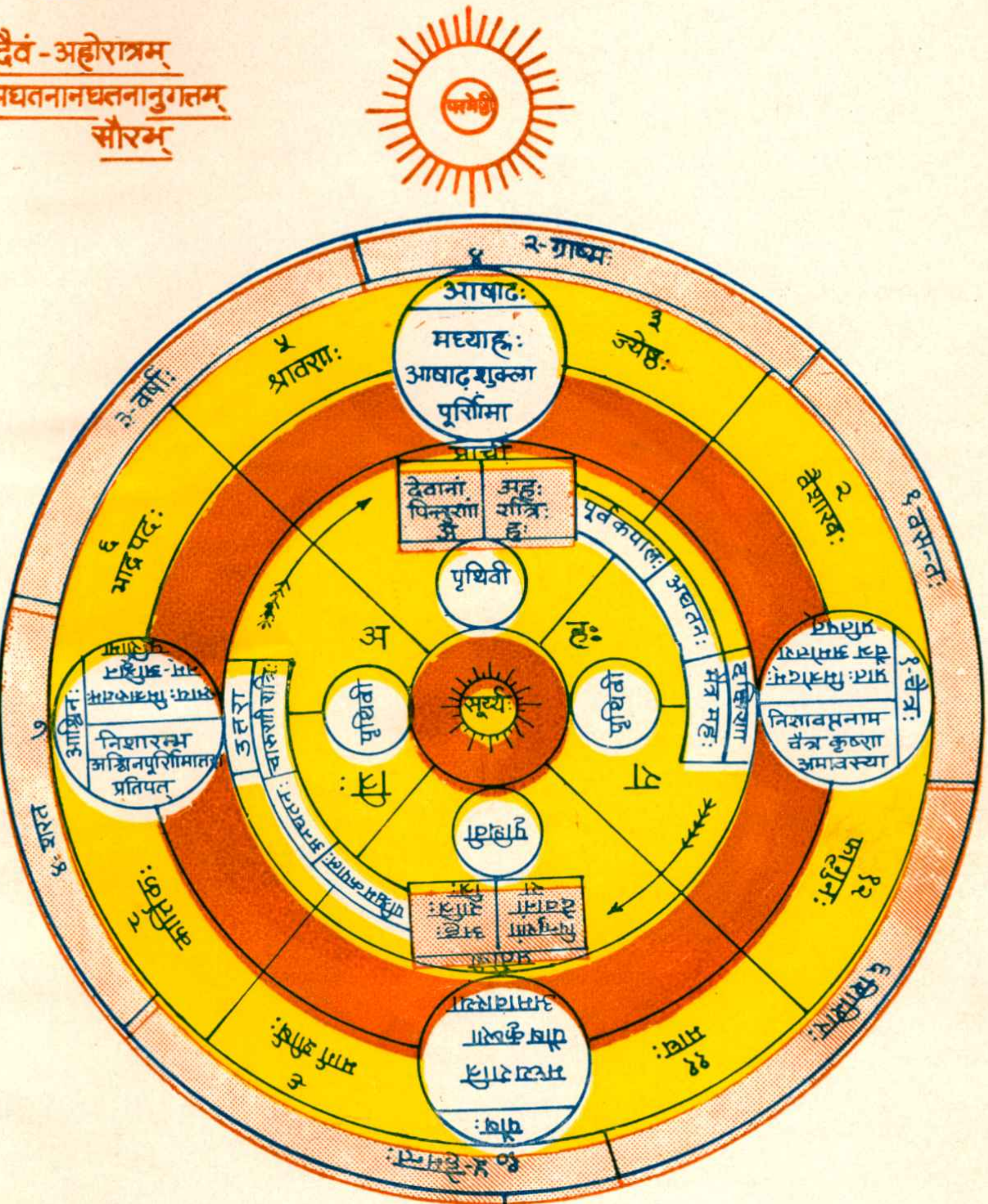
श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

२ - पैत्र - अहोरात्रम् अद्यतनानद्यतनानुगतम्

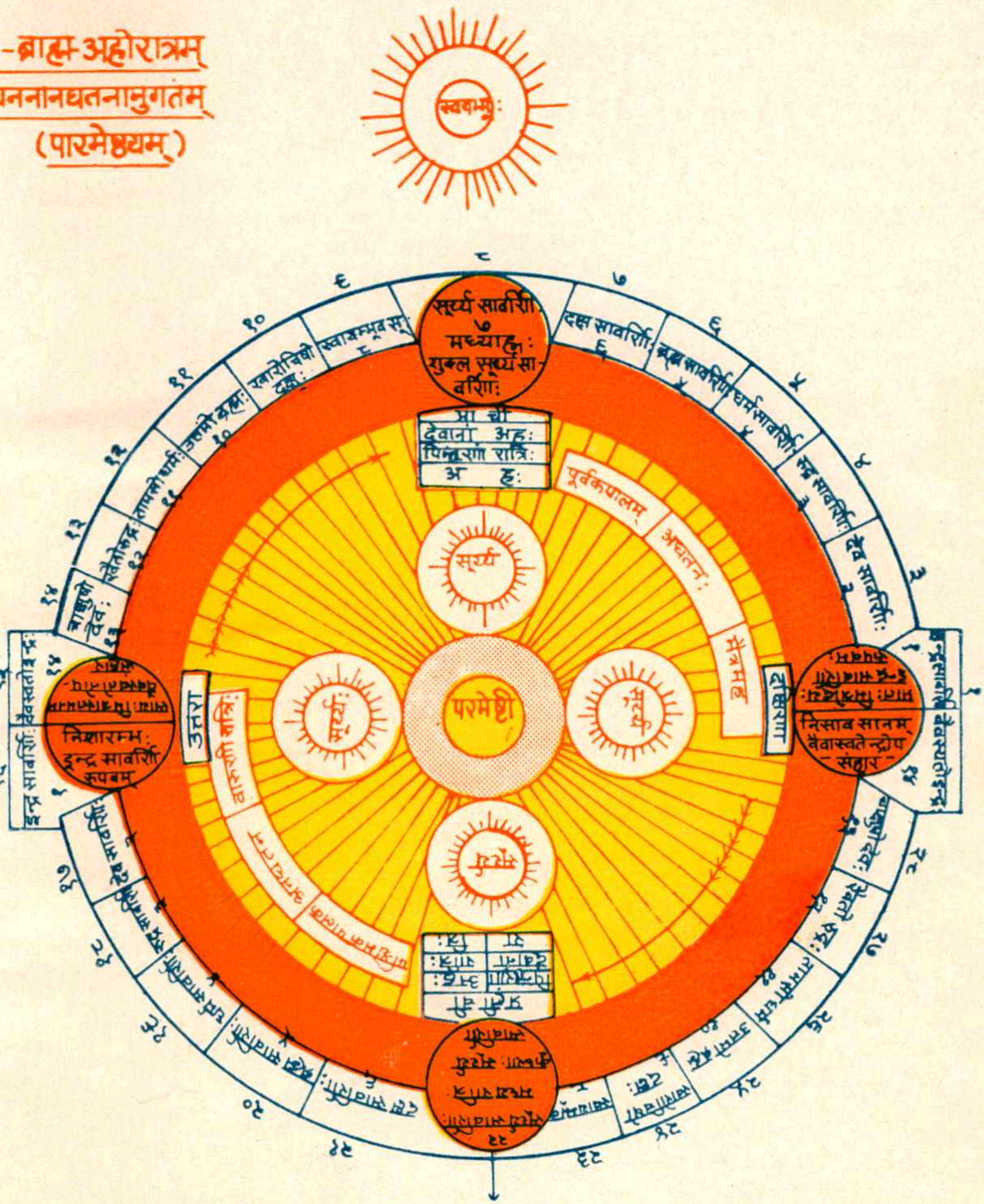
चान्द्रम



दैवं - अहोरात्रम्
अद्यतनानद्यतनानुगतम्
सौरम्

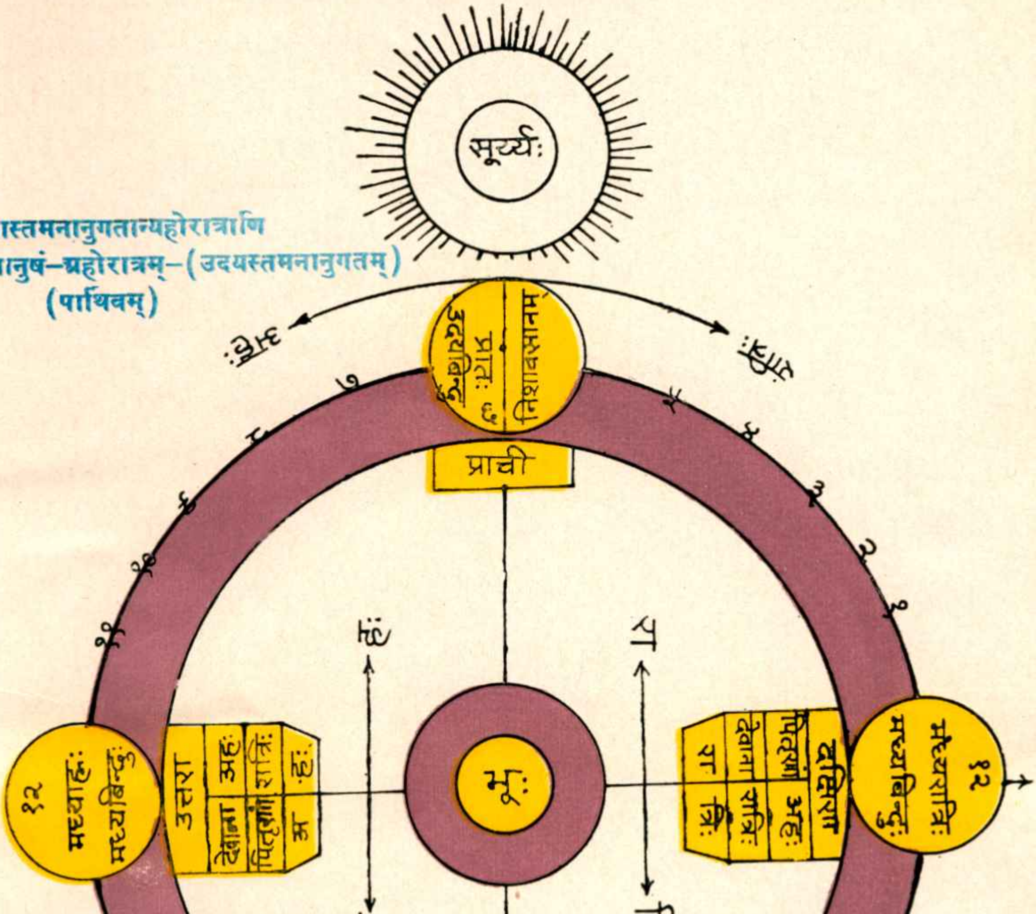


४-ब्राह्म-अहोरात्रम्
अघननानघतनानुगतम्
(पारमेष्ठ्यम्)

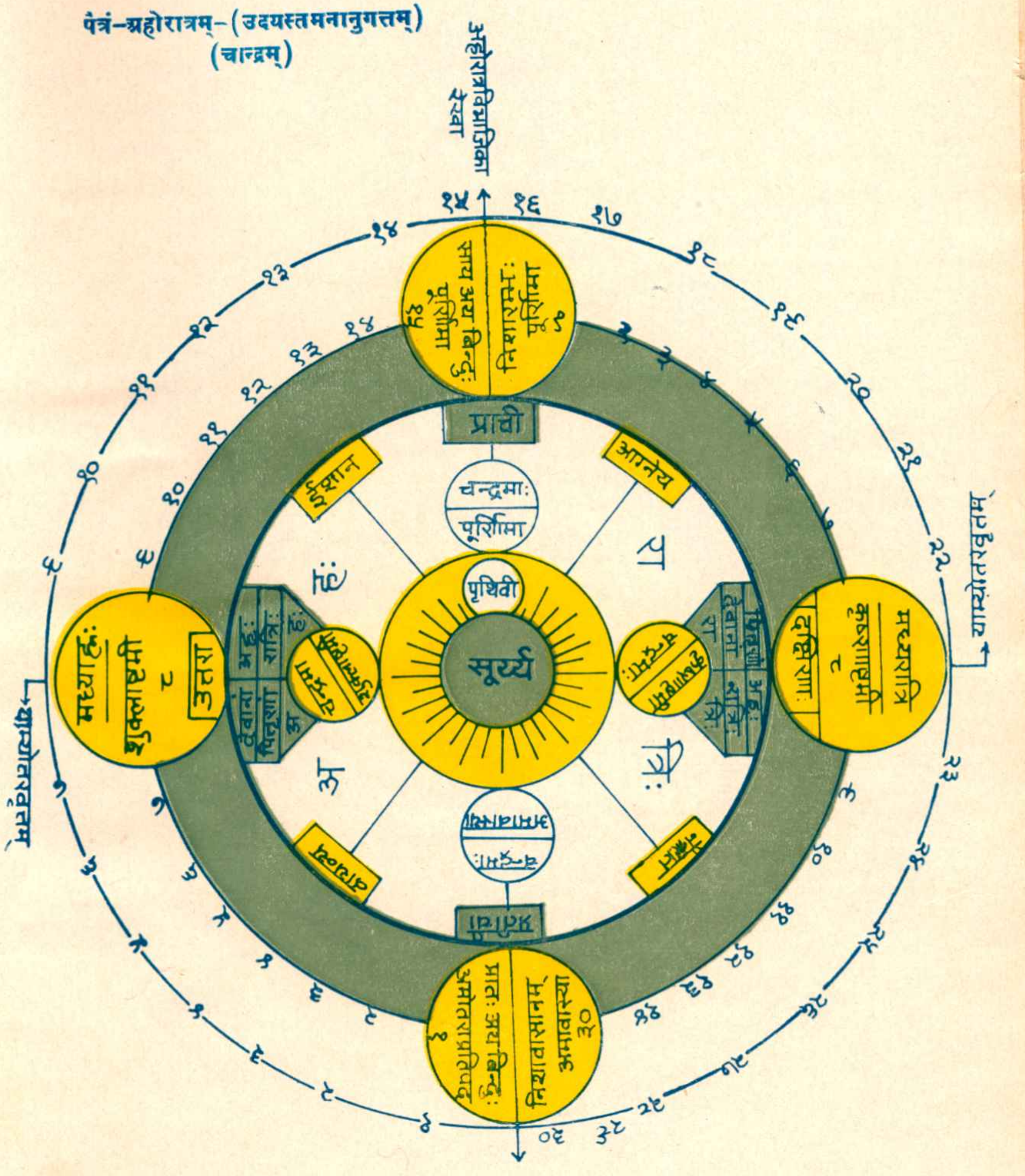


श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

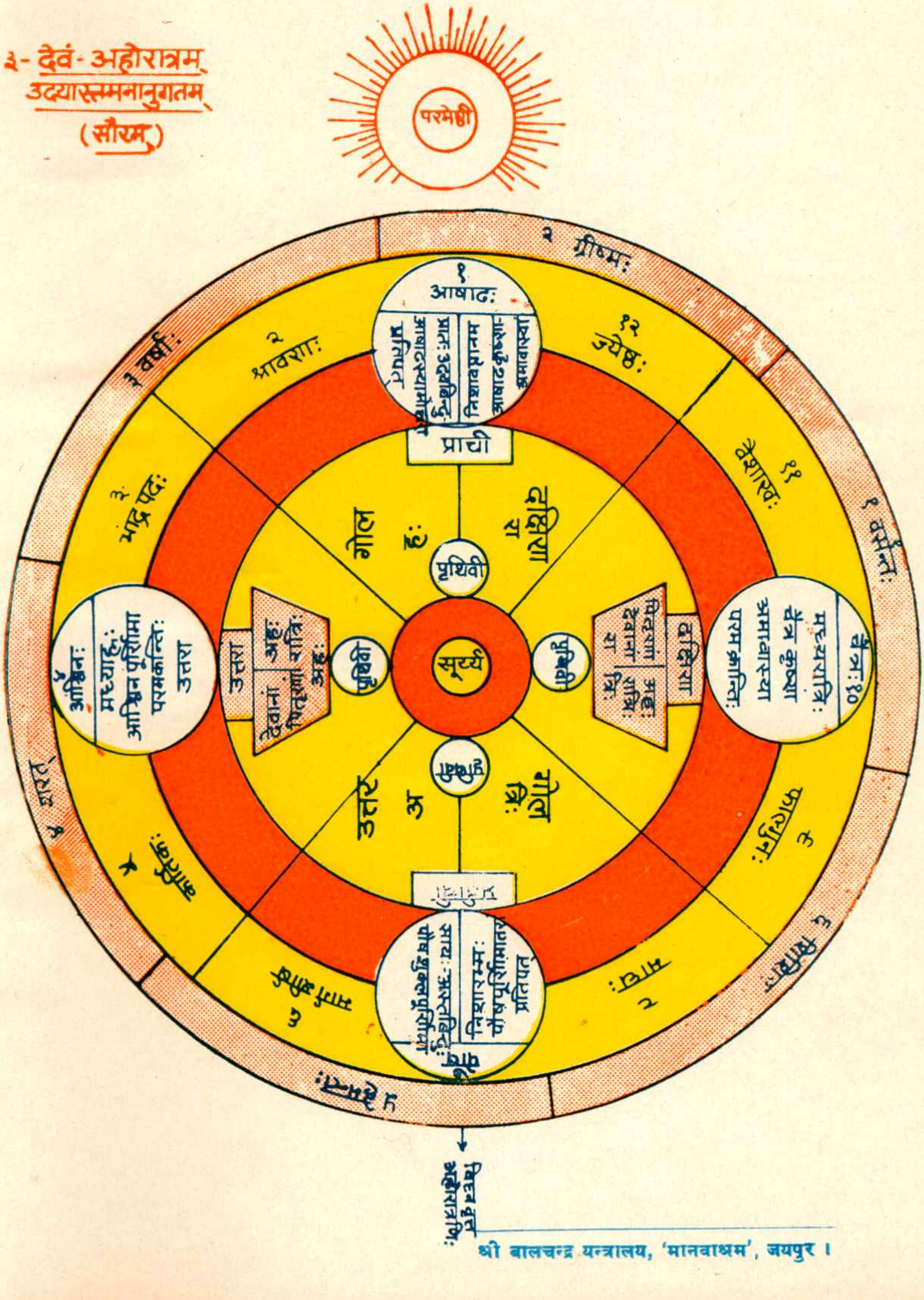
उद्यास्तमनानुगतान्यहोरात्राणि
१–मानुषं–अहोरात्रम्–(उदयस्तमनानुगतम्)
(पार्थिवम्)



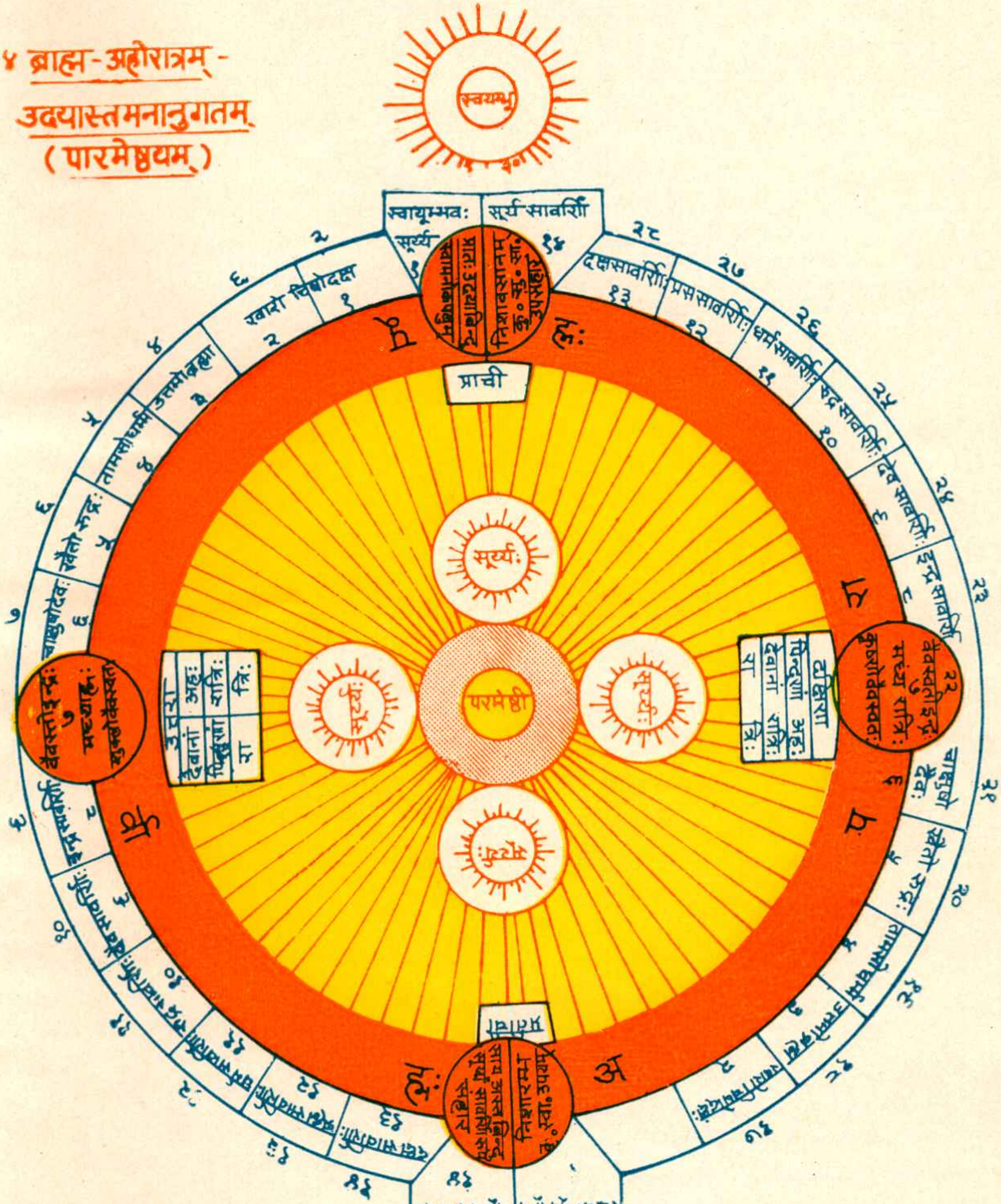
पैत्रं–अहोरात्रम्–(उदयस्तमनानुगतम्)
(चान्द्रम्)



३- देवं-अहोरात्रम्
उदयास्तमनानुगतम्
(सौरम्)

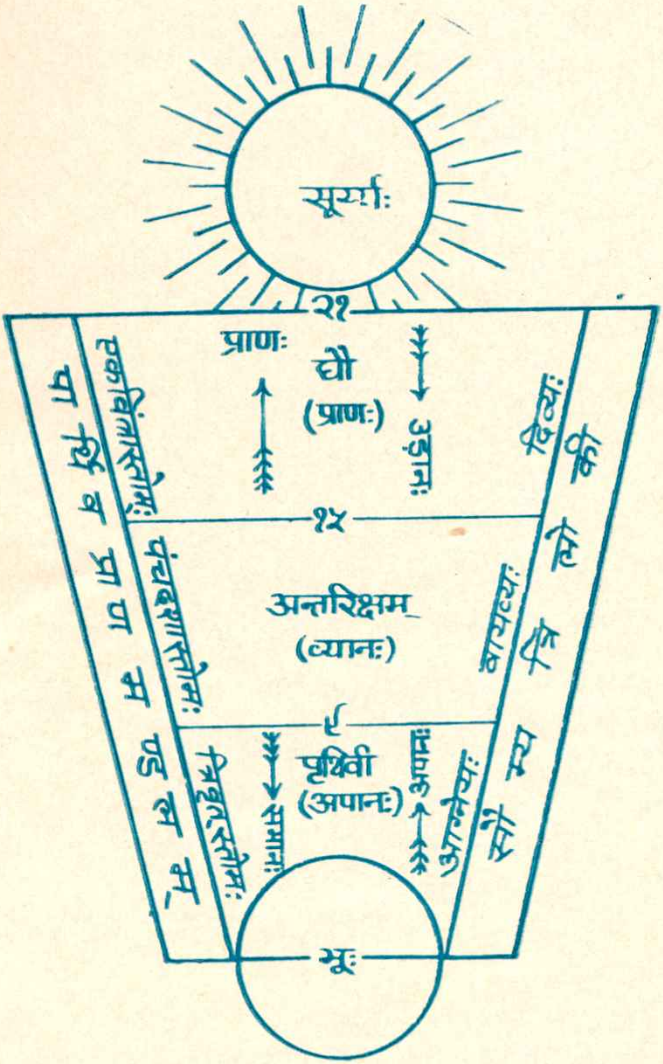


४ ब्राह्म-अहोरात्रम्-
उदयास्तमनानुगतम्
(पारमेष्ठ्यम्)



मुद्रक श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

स्तौम्यत्रिलोकी परिलेख–

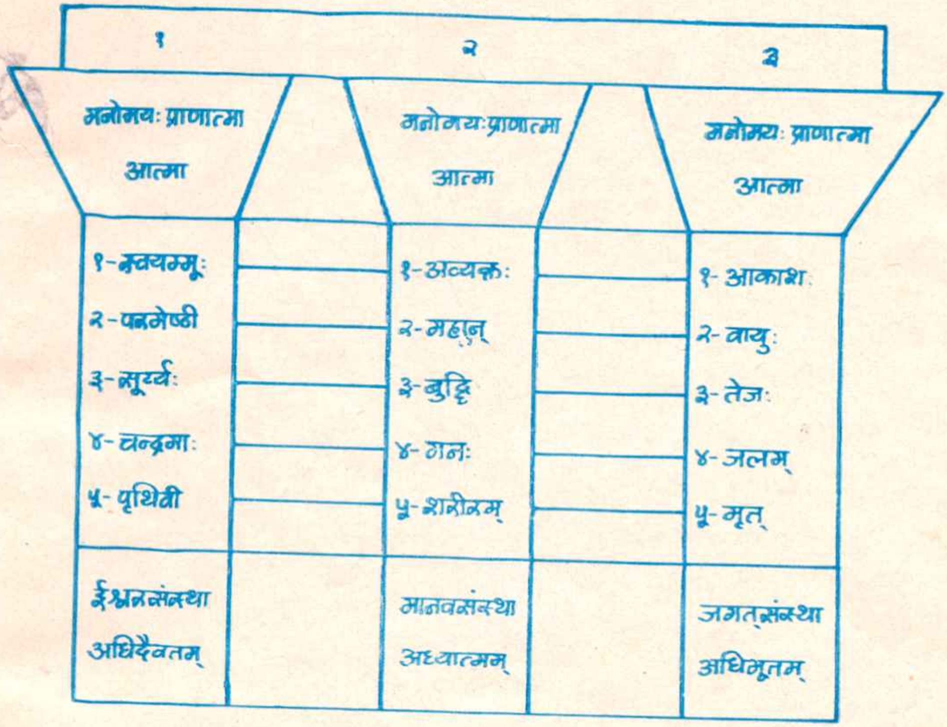


जिस प्रकार सौरप्राण-तत्त्व सौरत्रिलोकी (रोदसी) में व्याप्त होता हुआ पितृभेद से प्राणपञ्चक रूप में परिणत होता है, उसी प्रकार पार्थिव प्राण भी पार्थिव त्रिलोकी (स्तौम्या) में व्याप्त होता हुआ स्तोमभेद से प्राणपञ्चक रूप में परिणत हो रहा है। त्रिवृत (९)–पञ्चदश (१५)–एकविंश (२१) पार्थिव स्तोम ही इस त्रिलोकी के क्रमशः पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक हैं। इनमें प्रतिष्ठित अपान–व्यान–प्राण ही प्राणत्रयी है। यही 'प्राण–उदान, व्यान, समान–अपान' भेद से प्राणपञ्चक भावों में परिणत हो रहे हैं, जैसा कि परिलेख से स्पष्ट है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

संस्कृति श्रौर सभ्यता

त्रिधा विभक्त पञ्चतत्त्व परिलेख

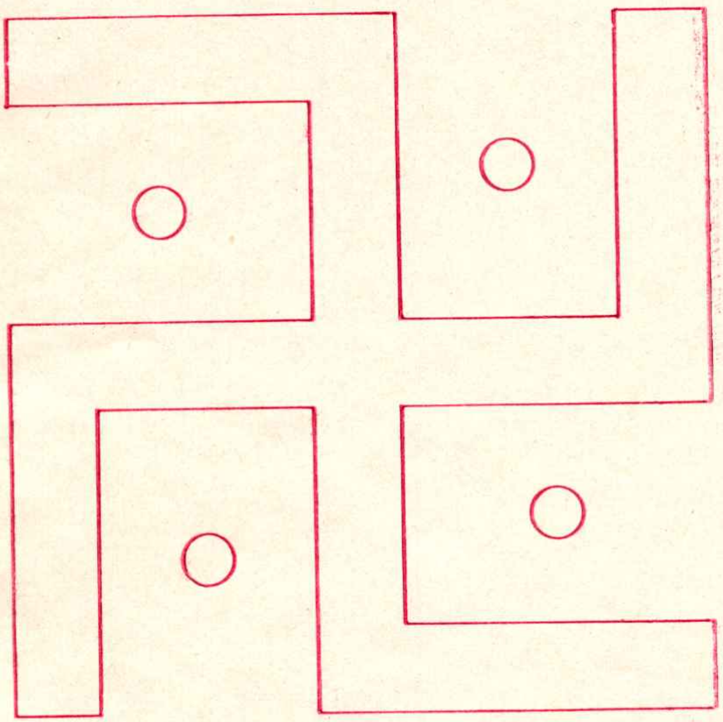


अधिभूत–ग्रधिदैवत–ग्रध्यात्म भेद से पञ्चतत्त्ववाद त्रिधा विभक्त हो रहा है, एवं तीनों में ही ग्रात्मा तथा पञ्चप्रकृतिरूप व्यक्तभावों का समान ही ग्रवस्थानक्रम है, जिस समानक्रम संस्थान के आधार पर हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि, स्थूल सर्वत्र 'ग्राश्रित' है, एवं सूक्ष्म सर्वत्र 'ग्राश्रय' है। सूक्ष्म सर्वत्र ग्राधार है, स्थूल सर्वत्र ग्राधेय है। सहज भाषा में सुसूक्ष्म प्राणात्मा ग्राश्रय है, स्थूलभूत ग्राश्रित है, जैसा कि उक्त परिलेख से स्पष्ट है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

द्विविध स्वस्तिक परिलेख

भौमस्वस्तिमण्डलम्

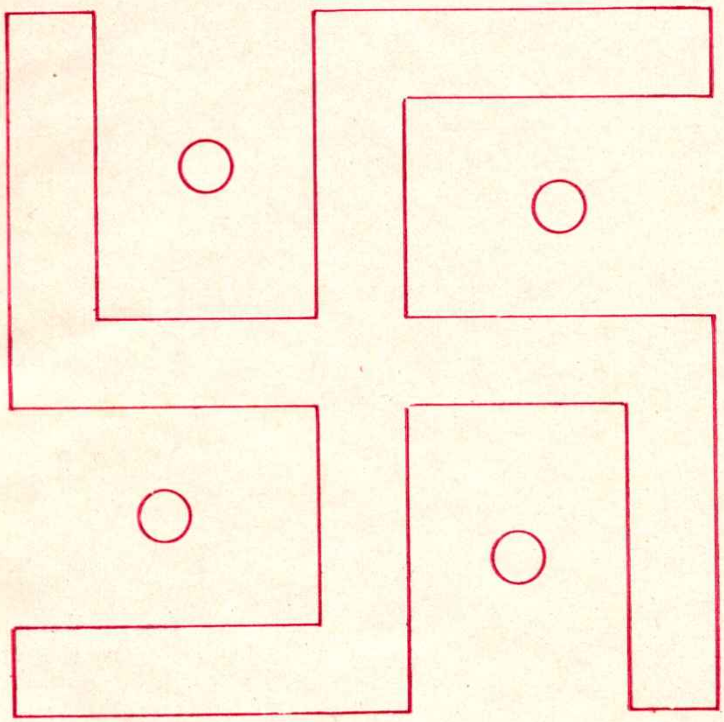


प्रकृति मण्डल में खगोल और भूगोल रूप से चतुर्भुजवृत्तात्मक दो स्वस्तिक सम्पन्न हो रहे हैं। दोनों का एक-दूसरे के प्रति समसाम्मुख्य है—दक्षिणोत्तर रूप से। अतएव दो प्रकार के स्वस्तिक बन जाते हैं, जिसका अर्थ है दोनों का समसाम्मुख्य। इसी प्राकृत स्थिति के आधार पर चतुर्भुजभाव के द्वारा लोकाचारानुबन्धी स्वस्तिक-रूप माङ्गलिक चिह्न बनाया गया है। यह भारतीय स्वस्तिक-चिह्न अपने प्रचलित-कल्पित आकार से भी प्राकृतिक-आकाशीय, तथा भौम दोनों स्वस्तिकों की नैदानिकी-प्रतिमा (प्रतीक) बना हुआ है। यह परिलेख उभय (दोनों) स्वस्तिक-चिह्नों के आशय का परिचायक है।

श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर।

द्विविध स्वस्तिक परिलेख

पार्थिवस्वस्तिमण्डलम्



श्री बालचन्द्र यन्त्रालय, 'मानवाश्रम', जयपुर ।

पं० मोतीलालजी शास्त्री द्वारा उपनिबद्ध एवं प्रकाशित वाङ्मय की सूची

१.	गीताविज्ञानभाष्यभूमिका—'बहिरङ्गपरीक्षा' प्रथमखण्ड	८०-००
२	गीताविज्ञानभाष्यभूमिका—'आत्मपरीक्षा' द्वितीयखण्ड 'क'	६०-००
३.	गीताविज्ञानभाष्यभूमिका—'ब्रह्मकर्म्मपरीक्षा' तृतीयखण्ड 'ख'	८०-००
४.	गीताविज्ञानभाष्यभूमिका—'कर्म्मयोगपरीक्षा' चतुर्थखण्ड 'ग'	८०-००
५.	गीताविज्ञानभाष्यभूमिका—'ज्ञानयोगपरीक्षा' पंचमखण्ड 'घ'	२५-००
६.	गीताविज्ञानभाष्यभूमिका—'भक्तियोगपरीक्षा' (पूर्वखण्ड) षष्ठखण्ड 'क'	६५-००
७.	गीताविज्ञानभाष्यभूमिका—'भक्तियोगपरीक्षा' (उत्तरखण्ड) सप्तमखण्ड 'ख'	१२०-००
८.	गीताविज्ञानभाष्यभूमिका—'बुद्धियोगपरीक्षा' अष्टमखण्ड 'ग'	१२०-००
९.	उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका —प्रथमखण्ड	८५-००
१०.	उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका —द्वितीयखण्ड	८०-००
११.	उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका —तृतीयखण्ड	८५-००
१२.	ईशोपनिषत्-हिन्दी-विज्ञानभाष्य—प्रथमखण्ड	७५-००
१३.	ईशोपनिषत्-हिन्दी-विज्ञानभाष्य —द्वितीयखण्ड	७५-००
१४.	केनोपनिषत्	८०-००
१५.	श्राद्धविज्ञानग्रन्थानुगत—'आत्मविज्ञानोपनिषत्' प्रथमखण्ड	६०-००
१६.	श्राद्धविज्ञानग्रन्थानुगत—'पितर' स्वरूपविज्ञानोपनिषत् द्वितीयखण्ड	२०-००
१७.	श्राद्धविज्ञानग्रन्थानुगत—'सापिण्ड्यविज्ञानोपनिषत् तृतीयखण्ड	१००-००
१८.	श्राद्धविज्ञानग्रन्थानुगत—'आत्मगतिविज्ञानोपनिषत्' चतुर्थखण्ड	४०-००
१९.	'भारतीय-हिन्दू मानव और उसकी भावुकता' नामक खण्ड चतुष्ट्यात्मक ग्रन्थ का 'विश्वस्वरूपमीमांसा' नामक प्रथमखण्ड	१००-००
२०.	संस्कृति और सभ्यता शब्दों का चिरन्तन इतिवृत्त एवं भारतीय सांस्कृतिक आयोजनों की रूपरेखा	१४०-००
२१.	दिग्देशकालस्वरूपमीमांसा	१२५-००
२२.	शतपथब्राह्मण हिन्दीविज्ञानभाष्य-प्रथमकाण्डानुगत-प्रथमखण्ड	१२०-००
२३.	शतपथब्राह्मण हिन्दीविज्ञानभाष्य-प्रथमकाण्डानुगत-द्वितीयखण्ड	१५०-००
२४.	शतपथब्राह्मण हिन्दीविज्ञानभाष्य-तृतीयकाण्डानुगत-प्रथमखण्ड	१००-००
२५.	शतपथब्राह्मण हिन्दीविज्ञानभाष्य-तृतीयकाण्डानुगत-द्वितीयखण्ड	१००-००
२६.	भारतीय दृष्टिकोण से 'विज्ञान' शब्द का समन्वय	१५-००
२७.	वेद का स्वरूप-विचार	२०-००
२८.	क्या हम मानव हैं ? (सांस्कृतिक-आमन्त्रण)	२५-००
२९.	'वेदस्यसर्वविद्यानिधानत्वम्'. (संस्कृत-निबन्ध)	२०-००
३०	राष्ट्रपतिभवनानुगत—व्याख्यानपञ्चक	२५-००
३१.	माण्डूक्योपनिषत्	१५-००
३२.	**Vedic Concept of Man & Universe**	४०-००
३३.	**Three thousand years of Indian Decadence.**	४०-००
३४.	विज्ञान चित्रावली प्रथम खण्ड	३००-००
३५.	परमेष्ठीकृष्ण रहस्य	२०-००
३६.	चाक्षुषकृष्ण रहस्य	१५-००
३७.	प्रतिष्ठाकृष्ण रहस्य	१५-००
३८.	ज्योतिकृष्ण रहस्य	१५-००
३९.	सत्यकृष्ण रहस्य	२५-००

कृष्णचन्द्र शर्म्मा

"मानवाश्रम विद्यापीठ"

दुर्गापुरा रोड, जयपुर-३०२०१५ (राजस्थान)